सन्तूर के स्वर

चमनलाल सपरू

कुछ सम्मतियाँ

सप्रू जी के कुछ सुन्दर कलात्मक और विचारगर्भित लेखों का संग्रह है। ये लेख कश्मीर के इतिहास, यहाँ की भाषा और कश्मीरी साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं।... इन लेखों द्वारा योग्य लेखक ने कश्मीरी साहित्य की अनेकों कलात्मक विशेषताओं को हिन्दी जगत के सामने उपस्थित करने का सुन्दर प्रयत्न किया है।

डॉ० बलजिन्नाथ पंडित
प्रिंसिपल, "इंस्टिच्यूट ऑव
कश्मीर-शैविज़्म" श्रीनगर।

प्रो० चमनलाल सपरू हिन्दी के सृजनशील कृतिकार हैं, उनका ध्येय कश्मीरी संस्कृति को हिन्दी के सशक्त माध्यम द्वारा भारतीय जनजीवन तक पहुँचाना रहा है।......कश्मीर की इस सांस्कृतिक थाती की मधुर धड़कनों को 'सन्तूर के स्वर' में गूँथकर प्रो० महोदय ने विलक्षण विदग्धता का परिचय दिया है। कश्मीरी जनमानस की इस अप्रतिम निधि को राष्ट्रीय जन-जीवन के साथ एक स्वर करके लेखक महोदय ने 'भारत-जननी' की एक हृदयता में एक नवीन अध्याय जोड़ दिया है...।

प्रो० काशीनाथ दर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
श्रीप्रताप कॉलिज, श्रीनगर।

सन्तूर के स्वर

लेखक

चमनलाल सपरू एम० ए०

प्रकाशक

सत्य-आनन्द प्रकाशन

१४७ त्रिवेणी रोड, बाई का बाग, इलाहाबाद–३

(C) लेखक

प्रथम संस्करण	१९६८
मूल्य	४.००
प्रकाशक	आनन्द प्रकाश गुप्त द्वारा श्री चमनलाल सप्रू के हेतु सत्य-आनन्द प्रकाशन की ओर से।
मुद्रक	वंशीधर शर्मा, भागवत प्रेस, ८५२, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।
आवरण	न० रा० गौतम

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ कल्चर अकादमी द्वारा आर्थिक अनुदान के लिये मैं अनुगृहीत हूँ।

लेखक

दो शब्द

मेरे मित्र श्री चमनलाल सपरू एम० ए०, जम्मू-कश्मीर प्रदेश के उन साहित्य-सेवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिये हिन्दी साहित्य सम्मेलन ऐसी स्थानीय संस्था को जन्म दिया है।

'सन्तूर के स्वर' में श्री सपरू ने संक्षेप में कश्मीर के इतिहास एवं उसकी संस्कृति का परिचय दिया है। कश्मीरी संतकवियो का भी इस पुस्तक में सुन्दर मूल्यांकन किया गया है। कश्मीर भारत का मुकुट है। साहित्य, काव्य-शास्त्र, आयुर्वेद, कला तथा जीवनोपयोगी समस्त वाङ्मय में कश्मीरी-पंडितों का योगदान है। शास्त्र का सर्जन जितना कश्मीर में हुआ उतना भारत के किसी प्रदेश में नहीं हुआ है।

श्री सपरू ने प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों की ही झाँकी प्रस्तुत की है। ललद्यद-परमानन्द से लेकर आधुनिक हिन्दी के कवियों का हिन्दी के विकास में जो योगदान है वह महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य का इतिहास तब तक अधूरा रहेगा जब तक कि कश्मीर के इन हिन्दी कवियों की हिन्दी शब्दावली और उनकी सांस्कृतिक विचारधारा को हम अपने साहित्य में समो न लेंगे।

श्री सपरू का यह प्रयास अभिनन्दनीय है। जम्मू-कश्मीर के समूचे साहित्य और जन-जीवन का एक बृहत् इतिहास अपेक्षित है, आशा है श्री सपरू इस क्षति की भी पूर्ति करेंगे।

इलाहाबाद

डॉ० हरिहर प्रसाद गुप्त
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर।

भूमिका

कश्मीर के इतिहास एवं संस्कृति में बचपन से ही मेरी रुचि रही है। जो कुछ इस सम्बन्ध में जाना या पढ़ा उसको लिपिबद्ध करके स्थानीय एवं राज्य के बाहर की पत्रिकाओं में प्रकाशित किया। कई मित्रों का आग्रह हुआ है कि उक्त लेखों को पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाये। इस वर्ष मैंने पिछले दस सालों में लिखित दस चुने हुए लेखों को संग्रहीत करके पाठकों के सामने रखने की चेष्टा की है। विषय विविध होते हुए भी मैंने इनको दो खण्डों में विभाजित किया है—(क) इतिहास और (ख) आलोचना।

इतिहास के अन्तर्गत केवल दो लेख हैं और आलोचना में आठ साहित्यिक विषयों पर लेख हैं। इन लेखों का सम्बन्ध मूलतः कश्मीरी साहित्य से होने के कारण हिन्दी के सहृदय पाठकों का किंचित मनोरंजन होगा।

मुझे विश्वास है कि अहिन्दी प्रान्त के लेखक की इस कृति को हिन्दी के पाठक अपनायेंगे और मेरा उत्साह-वर्धन करेंगे।

पुस्तक के प्रकाशन में सहायतार्थ में श्री आनन्द प्रकाश गुप्त, प्रबंधक सत्य-आनन्द प्रकाशन, इलाहाबाद, का मैं हृदय से आभारी हूँ।

चमनलाल सपरू

पुरुषयार, श्रीनगर

२० अक्तूबर १९६७

(राष्ट्रीय एकता दिवस)

विषय-सॅकेत

इतिहास

आलोचना

—०—

मुक्ता इमा इति जलं नलिनेषु लीनं
ज्ञातृत्वमेतदिति जाड्यमिनेषु लग्नम् ।
यज्ज्ञायते किमपि हन्त विमोहिनी सा
शक्तिः शिप्रः स्फुरति कपि तदाश्रपायाः ॥८.२०२६॥

(राजतरंगणी)

कश्मीर के इतिहास की झाँकी

कश्मीर देश का प्रारम्भिक इतिहास जानने के लिये 'नीलमत
पुराण' का सहारा लेना पड़ता है। 'नीलमत पुराण' की रचना कश्यप
ऋषि के पुत्र नीलनाग ने की है। बाद का इतिहास जानने के लिये क
इतिहासकारों की रचनाएँ उपलब्ध होती है। इनमें निम्नलिखत इति
हासकारों का नाम अग्रगण्य है।

कल्हण पंडित, जोनराज, श्रीवर, नारायण कौल, बीरबल काच
हसन तथा दीवान कृपाराम। इनमें कल्हण पंडित का नाम सर्वोपरि है
वास्तव में उनकी 'राजतरंगिणी' जो कश्मीर की सबसे प्राचीन इतिह
की पुस्तक है, पर ही शेष इतिहास आधारित है।

जब सतीसर शुष्क हुआ

कश्मीर के बारे में एक कथा प्रचलित है कि सारा कश्मीर

कश्मीर के इतिहास की झाँकी

कश्मीर देश का प्रारम्भिक इतिहास जानने के लिये 'नीलमत पुराण' का सहारा लेना पड़ता है। 'नीलमत पुराण' की रचना कश्यप-ऋषि के पुत्र नीलनाग ने की है। बाद का इतिहास जानने के लिये कई इतिहासकारों की रचनाएँ उपलब्ध होती है। इनमें निम्नलिखत इतिहासकारों का नाम अग्रगण्य है।

कल्हण पंडित, जोनराज, श्रीवर, नारायण कौल, बीरबल काचरू, हसन तथा दीवान कृपाराम। इनमें कल्हण पंडित का नाम सर्वोपरि है। वास्तव में उनकी 'राजतरंगिणी' जो कश्मीर की सबसे प्राचीन इतिहास की पुस्तक है, पर ही शेष इतिहास आधारित है।

जब सतीसर शुष्क हुआ

कश्मीर के बारे में एक कथा प्रचलित है कि सारा कश्मीर एक

झील था। जिसे सतीसर कहते थे। इसमें पार्वती नौका विहार किया करती थी। इसके किनारों पर ऋषि मुनि रहा करते थे और उनको सतीसर में रहने वाला जलोद्भव नामक राक्षस सताया करता था। किनारे पर रहने वाले नाग अपने संरक्षक नीलनाग के पास गये और इस भयानक राक्षस से बचाने के लिये उनसे निवेदन किया। नीलनाग ने अपने पिता कश्यप ऋषि के पास जाकर सारा वृत्तान्त सुनाया। कश्यप ऋषि ने तपस्या के अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश को सन्तुष्ट किया। विष्णु भगवान की आज्ञा प्राप्त करके 'अनन्त' ने अपनी पूरी शक्ति से हिमालय को, जो सतीसर को किनारे प्रस्तुत कर रहा था, बीच में चीर डाला और झील का सारा पानी वह निकला तथा सतीसर शुष्क हो गया। इस प्रकार पर्वतमालाओं से घिरा हुआ यह रमणीक देश निवास के योग्य हो गया।

खेची मावस की कथा

चार कल्पों तक कश्मीर में लोग केवल ग्रीष्मकाल में ही रहते थे और जाड़े में यहाँ से बाहिर चले जाते थे। यहाँ के आदिम निवासी, जो पहाड़ों की कन्दराओं में दूर-दूर रहा करते थे और 'पिशाच' एवं 'यक्ष' कहलाते थे कश्यप ऋषि की बसाई हुई जाति को जाड़े में सताया करते थे उनको सन्तुष्ट करने के लिये नीलनाग ने ब्राह्मणों से कहा कि आप लोग इन्हें कुछ बलि देकर संतुष्ट किया करें। इस प्रकार वह आपके मित्र बनकर रहेंगे। 'खेची मावस' नामक उत्सव आज कल भी कश्मीरी पंडित पौष की अमावस्या को मनाते हैं। उस दिन शाम को सभी लोग खिचड़ी और स्वादिष्ट पकवान बना कर मिट्टी की एक नई तश्तरी में घर के बाहर यक्ष के लिये रखते हैं। इसी प्रकार नाग जाति जो कि बाद में कश्मीरी ब्राह्मणों के साथ घुल-मिल गई, के संस्कार अब भी कश्मीरी पण्डितों में पाये जाते हैं। यहाँ पर मैं केवल एक दो

उदाहरण देना उचित समझता हूँ। कश्मीरी पण्डित स्त्रियाँ सिर पर एक विशेष कपड़ा बांधती हैं। जिसे 'पूच' कहते हैं। इसकी आकृति सर्पाकार होती है। सिर के पीछे के भाग को आयस्तान सं० आहिस्थान कहते हैं। नाग पूजा अब भी होती है। अनन्त चतुर्दशी को भगवान अनन्त की पूजा होती है। ब्राह्मणों के अनन्तर बौद्ध, मुसलमान तथा सिक्ख जाति मुख्यतया यहाँ पाई जाती है। समय-समय पर कालक्रम से इनका सूत्रपात यहाँ हुआ।

ऐतिहासिक सर्वेक्षण

कश्मीर के प्रागैतिहासिक काल का एक ही उल्लेखनीय राजा हुआ है। उसका नाम गोनन्द था। यह महाभारतकालीन जरासंघ का सम्बन्धी था।

श्रीनगर का निर्माता अशोक

अशोक (२४५ ई० पू०) ने श्रीनगर को बसाया और उसकी राजधानी पुराणाधिष्ठान (वर्तमान पांद्रेठन) के पास थी। श्रीनगर की शोभा उसके राज्यकाल में अकथनीय थी। एक भयंकर आग से श्रीनगर का विध्वंस हुआ किन्तु अशोक के राज्य की एकमात्र स्मृति पान्द्रेठन का बौद्ध मन्दिर अब भी विद्यमान है। १५०-१०० ई० पू० के लगभग कश्मीर तातार शासकों के अधीन हो गया। इसके तुरन्त बाद सीथियनों का यहाँ शासन हो गया।

तृतीय बौद्ध सभा का आयोजन

कनिष्क (१०० ई० पू०) का नाम इतिहास में बौद्ध धर्म के विस्तार और पुनरुद्धार के लिये प्रसिद्ध है। इन्होंने कनिष्कपुर नाम से एक नगर बसाया जो अब कानिसपुर (जिला बारामूला) के नाम से प्रसिद्ध है। कनिष्क का राज्य हिन्दूकुश के दोनों ओर पामीर तक फैला हुआ था, तृतीय बौद्ध सभा का आयोजन इन्हीं के समय में कश्मीर की

सुरम्य घाटी में हुआ था। विख्यात बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन इन्हीं के समय में हुआ था। उसका विहार वर्तमान हारवन के पास था। कश्मीर की बौद्ध धर्म को जो सबसे बड़ी देन कही जा सकती है, वह है हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म का समन्वय। कई ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि कश्मीर के अनेक प्रचारकों ने विदेशों में बौद्धमत का प्रसार करने में सराहनीय कार्य किया।

मिहिरकुल का शासन काल

हून शासकों में मिहिर कुल का नाम लिखने योग्य है। मिहिर कुल ने ५१५ ई० में कश्मीर को हस्तगत किया। उसने यहीं आकर ही शैव धर्म को अपनाया और मिहरेश्वर मन्दिर (सम्भवतः मामलेश्वर पहलगाम) की स्थापना की। उसकी क्रूरता का प्रमाण देते हुए इतिहास में लिखा है कि उसने एक हाथी को पर्वत की चोटी से गिरते हुए देखा और उसकी चिंघाड़ को इतना पसन्द किया कि उसने १०० हाथियों को पीरपंचाल से एक साथ गिराये जाने की आज्ञा दी। मिहिर कुल के बाद मेघवाहन और प्रवरसेन का नाम प्रमुख है। प्रवरसेन के विषय में कहा जाता है कि उसने वर्तमान श्रीनगर को बसाया। उसके समम श्रीनगर का नाम प्रवरसेनपुर था।

स्वर्ण युग

ललितादित्य मुक्तापीड़ (६९६-७३६) का कश्मीर के इतिहास में सर्वोच्च स्थान है। इतिहास में उसका नाम एक विजयी के रूप में प्रसिद्ध है। कश्मीर उसके शासनकाल में उन्नति के शिखर पर था। ललितादित्य ने पंजाब, कन्नौज, तिब्बत, बदखशां और पीकिंग को जीता और १२ वर्ष पश्चात कश्मीर लौटा। महाकवि भवभूति को भी इसी यात्रा में वह अपने साथ लाया। इसने सुविख्यात मार्तण्ड मन्दिर का निर्माण किया और परिहासपुर (वर्तमान शादीपुर) को बसाया, कई नहरें

खुदवाईं और ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने का प्रयत्न किया। में चीन उसने एक राजदूत और प्रतिनिधि मण्डल भी भेजा था। स्वयं हिन्दू होकर भी उसने बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा दिखाते हुए एक धर्म निरपेक्ष शासक की भाँति 'हुष्कपुर' में बौद्ध विहार और स्तूप बनवाया। उसने एक बहुत बड़ा लंगर बनवाया जहाँ प्रतिदिन एक लाख लोगों को भोजन प्राप्त होता था। ललितादित्य के साथ हिन्दू धर्म का स्वर्णयुग आरम्भ हुआ। उसके बाद शैव धर्म के प्रसिद्ध आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। अभिनव गुप्त और क्षेमेन्द्र जैसे इस युग में ही हुए हैं, जिनका शैवधर्म को स्तुत्य योगदान प्राप्त हुआ।

अवन्तिवर्मन (८५५-८८३ ई०) अवन्तिपुर नगर के संस्थापक और वहाँ के निर्माता थे, उनके दरबार में रत्नाकर और आनन्द वर्द्धन जैसे महाकवि विराजमान थे। शालि का दाम उनके शासनकाल में २०० से ३६ दीनार तक गिर गया। सुय्या नामक प्रसिद्ध इन्जीनियर जो कि इनका दरबारी था, ने कश्मीर को बाढ़ के आतंक से बचाने के लिये बाँध बनवाये। वर्तमान सोपुर उपनगर सुय्या के ही नाम पर बसा हुआ है। अवन्ति वर्मन के पुत्र शंकर वर्मन (८८३-९०२ ई०) के विषय में कहा जाता है कि उसके पास ९ लाख सेना थी।

९८०-१००३ ई० तक महारानी दिद्धा ने अपने पति क्षेमगुप्त के देहान्त पर कश्मीर का शासन सँभाला। उसने दिद्धा मठ (वर्तमान दिदमर) का निर्माण किया। दिद्धा एक चतुर और कुशल शासिका थी। अन्तिम हिन्दू शासकों में जयसिंह (११२८-११४९ ई०) का नाम भी उल्लेख्य है। उसी के शासनकाल में प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण हुआ था।

मुसलमानों का आगमन और शासनकाल

सिंह देव (१२९५-१३२४) के समय में स्वात से शाहमीर,

तिब्बत से रेंचननशाह और दर्दिस्तान से लंकर चक शरणार्थी बनकर आये। उन्होंने सरकारी नौकरियाँ ग्रहण की और उनको जागीरें भी दी गई। उक्त तीनों राजा के प्रति विद्रोह करते रहे। जुलक़दर खाँ उर्फ डुलच जो चंगेज़ खाँ का वंशज था, ने भारी सेना लेकर इसी समय कश्मीर पर आक्रमण किया। राजा सिंहदेव किश्तवाड़ की ओर भाग गया। रेंचनशाह (१३२५-१३२७) ने बाद में अपनी कूटनीति से शासन पर हाथ जमाया और बुलबुल शाह नामक मुसलमान दर्वेश के हाथों इस्लाम धर्म में दीक्षित हुआ। रेंचन शाह की मृत्यु के बाद सिंह-देव का भाई उदयनदेव पुनः कश्मीर का शासन हस्तगत करने में सफल हुआ और १५ वर्ष तक कश्मीर का शासक बना रहा। १३३१ ई० में एक तातारी उर्वन नामक व्यक्ति ने कश्मीर पर आक्रमण किया। राजा तिब्बत की ओर भाग गया, किन्तु उसकी रानी कूटरानी ने बड़ी वीरता का प्रदर्शन किया। किन्तु ५० दिन शासन करने के पश्चात् शाहमिर्ज़ा ने, जो कि राजा का मुख्य मन्त्री था, शमसुद्दीन के नाम से शासन पर अधिकार जमाया और 'सलातीनि कश्मीर' नामक वंश की नींव डाली इसने १३४०-१३४२ ई० तक शासन किया। १३७८-८४ के बीच कश्मीर में रहकर हमदान के मीर सैयद अली ने इस्लाम धर्म को खूब विकसित किया। सुलतान सिकन्दर (१३९४-१४९७) को बुतशिकन (मूर्तिभंजक) के नाम से पुकारा जाता है। उसने मन्दिरों को तोड़ा और हिन्दुओं को कत्लेआम किया जिस पर कश्मीरी के अनुसार यहाँ केवल ग्यारह हिन्दू घर बच गये थे।

बडशाह और श्रीभट्ट

सिकन्दर की क्रूरता को उसके पुत्र जैनुलाब्दीन (बडशाह) ने भुला दिया। उसने १४२३-१४७४ ई० के बीच शासन किया। उसके दरबार मेंकवि, विद्वान, नीतिनिपुण मंत्री थे। श्री भट्ट (शिर्यभट्ट) नामक प्रसिद्ध वैद्य, जिसने बादशाह की जान बचाई थी, उसका शिक्षा मन्त्री

था। जैन लब (महल) जैनगीर नहर, जैनाकोट, जैना बाजार, जैना-कदलपुल, जैनालेंक, (सोनालेंक, झील डल में) इस महान शासक के नाम को अब तक जीवित रखे हुए हैं। इसके राज्यकाल में कश्मीरी कला ने काफी प्रगति की। ज़ैनुलाब्दीन (बडशाह) का शासनकाल रवादारी के लिये प्रसिद्ध है। बडशाह के पश्चात अकबर के आगमन तक कश्मीर में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं हुई। केवल मात्र यूसफशाह चक वर्णनीय है। इसके साथ हब्बाखातून (प्रसिद्ध कश्मीरी कवयित्री) का विवाह हुआ था।

चकों ने मुगलों को परास्त किया। अकबर (१५५७-१६०५) ने कश्मीर में हारी पर्वत का किला और नगर-नगर को बसाया। मुगलों के समय में शुपियाँ-राजौरी मार्ग को बनवाया गया है।

जहाँगीर ने निशात, शालीमार अच्छावल, चश्माशाही, नसीम आदि का निर्माण किया। मुगलों के समय में यहाँ एक राज्यपाल रहा करता था। उनके बाद यहाँ अफगानों का शासन रहा। पठानों का राज्य का आतंक राज्य था। लगभग २८ पठान राज्यपालों ने यहाँ का शासन सूत्र सँभाला। इनमें एक हिन्दू राजा सुखजीवन १७५४ में यहाँ का गवर्नर बना। इसके आधीन यहाँ के लोगों को अनेक सुविधायें प्राप्त हुई जिनके कारण आज तक कश्मीरी में 'वख्ति सोखं ज़ुव' (सुख जीवन का समय) कहावत प्रचलित है। दीवान नन्दराम तिकू नामी एक कश्मीरी पण्डित को उसकी कार्यकुशलता के कारण काबुल का १७९३ ई० में प्रधान मन्त्री बनाया गया था, उसका नाम कुछ समय तक सिक्कों पर भी खुदवाया गया था।

सिख शासन

जब्बार खाँ (१८१९ ई०) अन्तिम पठान राज्यपाल था। उसकी क्रूरता से तंग आकर यहाँ के लोगों ने बीरबल दर के नेतृत्व में एक प्रति-निधि मण्डल महाराजा रंजीत सिंह के पास सहायतार्थ भेजा। सिखों ने

विजय पाई और २७ वर्ष तक शासन किया। रंजीत सिंह ने अपने शासनकाल में अपने प्रतिनिधि के रूप में ११ गवर्नर रखे। जिनमें दो मुसलमान भी थे। सिखों ने फौजी शासकों की भाँति शासन चलाया।

डोगरा शासन

१८४६ ई० में महाराजा गुलाब सिंह ने कश्मीर को अपने आधीन कर लिया और इस प्रकार डोगरा शासन की नींव पड़ी। उन्होंने अपनी कार्य कुशलता से लद्दाख, तिब्बत आदि सीमावर्ती इलाके अपने राज्य में शामिल कर लिये और वर्तमान जम्मू कश्मीर राज्य की स्थापना की।

महाराजा गुलाब सिंह के बाद उनके सुयोग्य पुत्र महाराजा रणवीर सिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने अनेक मन्दिर बनवाये और धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना की। रघुनाथ संस्कृत महाविद्यालय भी इन्होंने स्थापित किया और इसके साथ एक विशाल संस्कृत पुस्तकालय का निर्माण भी किया, जिसमें अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों का संकलन करवाया। राज्य की आर्थिक स्थिति इनके समय में काफी अच्छी रही।

महाराजा प्रतापसिंह १८८५ ई० में सिंहासन पर बैठे और ४० वर्ष तक राज्य करते रहे इनके समय में शिक्षा का प्रसार हुआ और अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई। बानिहाल कार्ट रोड, जेहलिम वेली रोड, शाली स्टोर (वर्तमान फूड कन्ट्रोल विभाग) मोहरा बिजली घर, अस्पतालों की स्थापना आदि इनके राज्य की प्रमुख घटनाएँ हैं।

महाराजा हरिसिंह (१९२५-१९४७) प्रताप सिंह के भाई राजा अमर सिंह की संतान थे। इनके राज्यकाल में जन-जागृति हुई और कई बार आन्दोलन हुए। जनता के हितार्थ इन्होंने कई उल्लेखनीय कार्य किये। कश्मीर के सौन्दर्य को बढ़ाने और पर्यटकों के लिए आकर्षण उत्पन्न करने के लिए इनके काम वर्णनीय हैं।

लोकराज

१९४७ में भारत विभाजन के अवसर पर महाराजा ने पाकिस्तानी आक्रमण से पूर्व भारत के साथ राज्य का विलय करके शासन जनता के प्रतिनिधियों के हाथ सौंपा। जिसके अनुसार उसके सुपुत्र श्री कर्णसिंह युवराज और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला मंत्रिमण्डल के नेता नियुक्त हुए। १९५१ में यहाँ विधान सभा के निर्वाचन हुए। १९५३ में शेख अब्दुल्ला को देश के विरुद्ध कार्रवाई करने के अपराध में सदर-ए-रियासत युवराज कर्णसिंह के आदेशानुसार कैद कर लिया गया। तत्कालीन उपप्रधान मन्त्री बख्शी गुलाम मुहम्मद ने नये मंत्रिमण्डल का निर्माण किया। बख्शी गुलाम मुहम्मद दस साल तक कश्मीर के प्रधानमंत्री रहे। उनके बाद ख्वाजा गुलाम मुहम्मद सादिक़ ने मंत्रिमण्डल का नेतृत्व सँभाला।
मन्त्री हैं।

राज्य में चार सार्वजनिक चुनाव हो चुके हैं और भारतीय संविधानान्तर्गत यह राज्य हर प्रकार से प्रगति करता जा रहा है। पाकिस्तान और चीन के आक्रमण के फलस्वरूप कई हजार वर्गमील भूभाग आज यद्यपि पराधीन है तथापि स्वतन्त्रभारत के एक अविभाज्य अंग के रूप में इसका भविष्य उज्ज्वल है।

—'योजना' कश्मीर (संस्कृत विशेषांक)

———

कश्मीर की एक प्राचीन जाति—

नाग

●

यह एक मानी हुई बात है कि वर्तमान कश्मीर को महर्षि कश्यप नें बसाया था। ऐसी किंवदन्ति है कि इस देश में जो कि पहले सतीसर था, जलद्भू नामक एक राक्षस रहा करता था। इस राक्षस ने सरोवर के इर्द-गिर्द पहाड़ियों पर रहने वाले लोगों को काफ़ी तंग कर रखा था। पहाड़ियों पर निवास करने वाले लोगों ने महर्षि 'कश्यप' से जाकर विनती की। वे यहाँ पधारे और इस सरोवर का सर्वेक्षण करके बारा-मूला के पास पहाड़ को चीर कर पानी बाहर निकलवा दिया। इससे पहाड़ियों के बीच का सारा भूखण्ड सूख गया और कहीं-कहीं गढ़ों में पानी रह गया। इस प्रकार इस प्रदेश में एक बड़ा भूखण्ड निवास के योग्य बना। इस भूमि का ही नाम 'कश्यप-मेरु' अर्थात् कश्मीर पड़ा।

इस घटना के पश्चात आर्य लोग यहाँ आकर बसने लगे। साथ ही निकटवर्ती पर्वतों पर रहने वाली कई जातियाँ भी यहाँ आकर निवास करने लगीं। यह जातियाँ अनार्य थीं। इनमें नाग, यक्ष तथा पिशाच प्रसिद्ध हैं।

पुराणों एवं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि हिमालय की तराई में कुछ विशेष जातियाँ रहा करती थीं। इनमें किन्नर और यक्ष प्रसिद्ध हैं। यह लोग गायन विद्या में बड़े निपुण थे। कश्मीर में इन जातियों और आर्य कबीलों में प्रायः झड़पें हुआ करती थीं। किन्तु बाद में यह जातियाँ एक दूसरे से घुल-मिल गईं।

यद्यपि आर्यों की बहु-संख्या होने के कारण उनका ही बाद में आधिपत्य रहा।

यक्ष अमावस्या का उत्सव

कश्मीर के हिन्दू पौष की अमावस्या को एक उत्सव मनाते हैं जो 'खिचड़ी-अमावस्या' के नाम से प्रसिद्ध है। इस रात्रि को कश्मीरी हिन्दू खिचड़ी पकाते हैं और एक मिट्टी की तश्तरी में डाल कर यक्ष के लिये घर के बाहर रख आते हैं। इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ति यह है कि आर्य लोग प्रायः जाड़ों में भारत के गर्म प्रदेशों में निवास करते थे। एक वर्ष एक बूढ़ा शारीरिक असमर्थता के कारण जाड़ों में यहीं रह गया। जाड़ों में पहाड़ी अनार्य जातियों के कुछ लोग नीचे उतर कर घाटी में खाद्य पदार्थ आदि ढूंढ़ते रहे। जब बूढ़े से उनकी भेंट हुई तो इन लोगों ने आपस में निश्चय किया कि आपसी वैमनस्य को दूर करने के लिये आर्य लोग जाड़ों में इन अनार्य जातियों के लिये विशिष्ट पदार्थ बलि के रूप में दिया करेंगे। यहाँ यह बताना भी आवश्यक है कि आर्य लोग इन जातियों से किंचित आतंकित रहते थे, अतः जाड़ों में पंजाब आदि स्थानों में चले जाते थे।

नॉगराय और हीमाल

कश्मीर प्रदेश की एक अत्यन्त प्रसिद्ध लोक कथा है—नॉगराय और हीमाल। नागों के राजकुमार और आर्यों की राजकन्या की यह प्रेम-कथा अति प्राचीन काल से यहाँ प्रचलित है।

आज यदि हम कश्मीरी रीति-रिवाज, भाषा और पहनावे आदि का सूक्ष्म निरीक्षण करें तो कुछ ऐसी बातों का पता चलता है जो प्रायः भारत के शेष प्रदेशों में नहीं मिलती हैं। जैसे कश्मीरी भाषा के यह दो शब्द—मोल और मॉज्य। इनका संस्कृत पिता और माता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ उत्सव जैसे 'खेचि मावस' (खिचड़ी अमा-वस्या—इसका वर्णन ऊपर हो चुका है।), गाड़भत—यह उत्सव भी जाड़ों में ही मनाया जाता है। इस दिन विशेष रूप से मछली पकाकर घर की सबसे ऊपर की मंज़िल में 'घर-देवता' के निमित्त भोजन की थाली रखी जाती है। 'दोद-द्युन' कश्मीरी हिन्दू महिला जब गर्भवती होती है तो प्रसव से कुछ समय पूर्व विशेष रूप से सजधज कर मायके से दही के मटके साथ लेकर ससुराल जाती है। पितृगृह में भी दावत होती है और ससुराल में सगे संबन्धियों में दही का वितरण होता है। उपर्युक्त सभी उत्सवों का सम्बन्ध आर्य जाति से नहीं है। यह उत्सव आदि अवश्य ही हमें अनार्यों (यक्ष, नाग आदि) से परम्परा में प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार यहाँ के पहनावे में कुछ वस्तुएँ जैसे—पंडितानियों की—पूच। कुछ विशेष ज़ेवर जैसे—डेजहरू, तालरज़ इनका भी आर्यों के पोशाक अलंकारों से कोई सम्बन्ध नहीं। स्पष्ट है कि उपर्युक्त और ऐसी बीसियों वस्तुएँ हमें अन्य जातियों से विरसे में प्राप्त हुई हैं और हमने इनको अपनाया है। इन बातों पर शोध करने की बड़ी आवश्यकता है। खोज के लिये यह बड़ा ही मनोरंजक विषय बन सकता है। इस संक्षिप्त लेख में केवल मात्र नागों के सम्बन्ध में ही लिखा जाता है।

नाग वास्तव में हिमालय की तराई से लेकर नागा प्रदेश तक फैले हुए थे। कश्मीर और वर्तमान आसाम प्रदेश के सम्बन्ध अति प्राचीन हैं। इस बात का उल्लेख राजतरंगिणी में भी मिलता है। यह लोग सांपों के उपासक थे तथा भगवान शिव इनके इष्ट-देव। आजकल भी हिमालय से संलग्न इलाकों में शिव की पूजा विशेष उत्सवों पर होती है। शिवरात्रि नेपाल और कश्मीर का प्रधान उत्सव है।

'अनन्त' सांपों के राजा हैं और भगवान विष्णु के आसन माने जाते हैं। इसी अनन्त देवता के नाम पर कश्मीर के प्रसिद्ध क़स्बे अनन्त नाग का नाम पड़ा है। कश्मीरी हिन्दू विस्तता नदी के जन्मदिन (विस्तता त्रयोदशी) के दूसरे दिन भाद्रपद शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को 'अनन्तचौदस' नाम से एक उत्सव मनाते हैं। प्रातःकाल पुरोहित अपने यजमानों के घर सर्पाकर धागा बाँट कर दक्षिणा प्राप्त करते हैं।

इसके अतिरिक्त कश्मीर के अनेक स्थानों के नाम आज भी नागों से सम्बन्ध रखते हैं। जैसे कुकरनाग, वेरीनाग, कौंसर नाग, शिश्रम नाग, विचार नाग, नाराण नाग इत्यादि। यह स्थान नागों के प्रमुख केन्द्र रहे होंगे।

नागों का हमारी वेशभूषा पर बड़ा गहरा असर पड़ा है। कश्मीरी पंडितानियाँ सिर पर पूच नामक एक विशेष कपड़ा ओढ़ती हैं। इसको लेई लगाकर तैयार किया जाता है। इसका रूप सर्पाकार बनता है। इसके ऊपर का भाग सिर पर सांप के फन की भाँति बनता है। एक सजी-सजाई पंडितानी नागिन की भाँति दिखाई देती है। 'पूच' के ऊपर के भाग को सिर के जिस भाग साथ सटाया जाता है उसे कश्मीरी में 'आयस्तान' कहते हैं। यह शब्द अहि (सर्प)+स्तान (स्थान) का ही बिगड़ा हुआ रूप दिखाई देता है। जात-कर्म संस्कार, यज्ञोपवीत तथा विवाहोत्सव पर इस पूच के सिर को सिन्दूर से अथवा सुनहरी या

रंगदार कागज से इस प्रकार सजाया जाता है कि सिर पर सर्प का फन अंकित हो जाए।

इसके अतिरिक्त कश्मीरी पंडित पगड़ी इस ढंग से बांधते हैं जैसे सांप कुंडलाकार बैठा हो। इससे स्पष्ट है कि कश्मीरियों के सिर के वस्त्रों के ढंग का सर्पों से विशेष सम्बन्ध है। इसके साथ ही यहां एक विशेष प्रकार की चटाई भी, जिसे कश्मीरी में 'चाँगिज' कहते हैं सर्पाकार ही होती है। इन कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि सांपों से सम्बन्धित नाग संस्कृति का अब भी कश्मीर के जनजीवन पर गहरा असर है।

—'मार्गदर्शक' झांसी
(ज० क० विशेषांक)

——

१९ वीं शताब्दी के कश्मीरी कवि—

परमानन्द और उनकी हिन्दी कविता

कश्मीरी साहित्य में भक्ति साहित्य भी काफी मात्रा में उपलब्ध है। वास्तव में यदि देखा जाए तो कश्मीरी साहित्य ही लल्लेश्वरी के रहस्य-पूर्ण भक्ति काव्य से आरम्भ होता है। लल्लेश्वरी कश्मीरी काव्य की निर्गुण शाखा की प्रतिनिधि कवयित्री हैं। इसके अतिरिक्त रूप भवानी तथा मिर्ज़ा काक का नाम भी इस शाखा में गिना जा सकता है। रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि प्रकाश भट्ट हैं। प्रेम मार्गी (सूफी) शाखा के अन्तर्गत शेखनूरुद्दीन, हबीब उल्लाह नौशहरवी, शाह कलंदर, शमस फ़क़ीर तथा वहाबखार का नाम प्रमुख है। कृष्ण भक्ति शाखा में महाकवि परमानन्द का नाम सर्वोपरि है। इस शाखा के अन्तर्गत कृष्ण राजदान का नाम भी उल्लेखनीय है।

कश्मीरी भक्ति काव्य की पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने के लिये शैव दर्शन तथा सूफी मत का मुख्य रूप से अध्ययन करना अनिवार्य है। कृष्ण भक्त कवियों पर शैव दर्शन की अपेक्षा श्रीमद्‌भागवत का गहरा प्रभाव पड़ा है। भक्त कवियों ने जहाँ कश्मीरी साहित्य की अभिवृद्धि में अपूर्व योगदान दिया वहाँ इनका हिन्दू मुस्लिम ऐक्य और एक मिली-जुली संस्कृति को जन्म देने में भी बड़ा भारी योगदान रहा है। इन संत और सूफी कवियों की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान में कोई अंतर नहीं आध्यात्मिक क्षेत्र में यह बाहरी भेद भाव नहीं होते हैं। तभी तो लल्लेश्वरी कहती है—

शिव छुय थलि थलि रोज़ान,
मो ज़ान ह्योंद त मुसलमान।
त्रुकै छुक त पान परज़ान,
सोय छै दयस सॉत्य ज़ानी ज़ान॥

(शिव ही सर्वत्र व्याप्त है। हिन्दू और मुस्लिम में भेद न मान। ज्ञानी हो तो अपने आपको पहचानो। वही परमात्मा के साथ पहचान है।)

शेख नूरउद्दीन, जिसे प्रायः नुन्द ऋषि के नाम से जाना जाता हैं, कहते हैं—

पोज़ योंद बोज़ख पाँच न्वम्रख,
नत माजय न्वम्रख रछि, न माज़।
शिवस सा'त्यन यलि म्युल करख,
स्यद्धि च्य ऋषि मालि त्यलि न्यमाज़॥

(यदि तुम तत्व (सत्य) को जानना चाहते हो, तो पाँच इंद्रियों को वश में रखो। अपने शरीर को झुकाने से कुछ न होगा। यदि तुम

शिव से एक हो जाओगे, हे ऋषि ! तभी तुम्हारी निमाज़ सफल होगी ।)

इस "श्रुख" में 'शिव' तथा 'निमाज़' के अद्भुत सामंजस्य को देखा जा सकता है ।

जीवन परिचय

इस प्रकार की स्वस्थ आध्यात्मिक एवं साहित्यिक परम्पराओं से युक्त कश्मीर मंडल में महाकवि परमानन्द का जन्म हुआ । उनका जन्म १७९१ ई० में अनंतनाग जिला के सीर गाँव में हुआ । यह गाँव प्रसिद्ध तीर्थ मटन (मार्त्तण्ड) से थोड़ी दूर पर स्थित है । इस समय कश्मीर पर पठानों का शासन था । इनके पिता का नाम कृष्ण पंडित था और माता का नाम सरस्वती । आरम्भ में फारसी की शिक्षा प्राप्त की । उस समय फारसी भाषा ही शिक्षा का माध्यम थी । इनका बचपन का नाम नंदराम था और 'गरीब' उपनाम से फारसी में भी कविता किया करते थे । पं० नारायण जू मूरचगर (मूर्त्तिकार) द्वारा निर्मित इनका एक प्राचीन चित्र इनके जन्म स्थान पर उपलब्ध है । सीर गाँव में सरस्वती परमानन्द की उपास्य देवी थी । बाद में अपने जन्म स्थान के ही पास पहाड़ी पर स्थित 'भर्ग शिखा' के मन्दिर में दुर्गा की उपासना किया करते थे । इस स्थान के अनुपम प्राकृतिक सौंदर्य ने इनके भक्ति काव्य में भी अद्भुत-काव्य सौंदर्य का समावेश किया है । इनके पिता पटवारी थे और उनके देहान्त पर यह भी पटवारी बने । इनका विवाह मालद्यद नामी एक कन्या के साथ काफी अल्पवय में हुआ था । मालद्यद उग्र स्वभाव की थी । परमानन्द विनोदी स्वभाव के थे । उस समय पटवारियों को बड़ी नीच दृष्टि से देखा जाता था । परमानन्द का एक अधिकारी मिसरा राघूमल था । इसके कटु व्यवहार से तंग आकर इन्होंने अपने एक पद में उस पर व्यंग कसा था ।

परमानन्द पर समसामयिक साधु-महात्माओं का काफी प्रभाव रहा ।

इनमें हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी। परमहंस स्वामी आत्मानन्द जी के साथ इन्होंने काफी समय व्यतीत किया और उनके साथ वेदान्त का खूब अध्ययन किया। एक सिख साधु के सत्संग से गुरु ग्रन्थ साहिब का अध्ययन किया। ग्रंथ साहिब की इन पंक्तियों—

इक लख पूत सवा लख नाती।
ते रावण घर दिवा न बाती॥"

को इस प्रकार अपनी एक हिन्दी रचना में इन्होंने प्रस्तुत किया है—

इक लख पूत सवा लख नाते।
जिस रावण घर दिवा न बाती॥
क्या फल पाया कंसासुर ने……॥"

मुसलमान फकीरों में वाहब साहब के साथ इनका सम्पर्क रहा। परमानन्द ने इनकी इच्छानुसार फारसी शब्दों में मिश्रित एक कश्मीरी कविता लिखी। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि पंडित परमानन्द कश्मीरी कविताओं में संस्कृत मिश्रित शब्दावली का प्रयोग किया करते थे। प्रसिद्ध कवि महमूद गामी से भी इनकी भेंट बताई जाती है। इसके अतिरिक्त इनका एक पड़ोसी पं० टिकाराम था; वह साधु था और दार्शनिक, धार्मिक तथा नैतिक विषयों पर फारसी में कविता किया करता था। उससे भी परमानन्द प्रभावित थे।

प्रारम्भ में उन्होंने देवी की प्रशंसा में काव्य रचना की। जैसा कि पहले बताया गया है मट्टन में 'भर्ग शिखा' भगवती की स्थापना है। कवि की उपास्य देवी होने के कारण इन्होंने उक्त देवी की प्रशंसा में स्तुति की है। इसकी प्रारम्भिक पंक्ति यूं है—

श्री भर्ग रूपी राज्ञा भवानी।

लीन कर च दीन अस्य छि चॉनिए॥

कई अन्य भक्ति गीत इन्होंने सीर गाँव में सरस्वती देवी के पवित्र कुण्ड पर साधना करते हुए रचे हैं।

महाकवि परमानन्द ने अपनी साधना से योग की उच्च अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इन तथ्यों का संकेत उनकी कतिपय रचनाओं में मिलता है। अमरनाथ यात्रा से सम्बन्धित उनकी कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

मास्टर जिन्दा कौल जी ने इनकी कविताओं को निम्नलिखित क्रम से विभाजित किया है—

(१) देवी भवानी, गणेश, शिव, विष्णु आदि की प्रशंसा में गाए गए विनय के पद। इन पदों में कवि ने अपने किए पापों का उल्लेख करते हुए क्षमा प्रार्थना की है।

(२) दूसरे भाग में इनकी अमरनाथ जी की यात्रा जैसी कविताएँ आती हैं। इनमें योग सम्बन्धी बातों पर काफी प्रकाश डाला गया है।

(३) तीसरे भाग के अन्तर्गत उनकी तीन लम्बी कविताएँ आती हैं—

(क) सुदामा चरित्र।

(ख) राधा स्वयंवर।

(ग) शिव लग्न।

इन कविताओं का केन्द्रीय भाव क्रमशः सुदामा और श्रीकृष्ण का अनन्य प्रेम, राधा तथा अन्य गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम तथा शिव और उमा का मिलन है। यह तीनों कविताएँ परमात्मा का जीवात्मा के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाती है और इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम और आकर्षण।

आगे चलकर 'मास्टर जी' ने परमानन्द की फुटकर कविताओं के दो भेद किए हैं—

(१) आध्यात्मिक पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं के निमित्त कविताएं। इनमें ज्ञान की प्राप्ति के लिये आवश्यक साधनाओं का उल्लेख किया गया है।

(२) अपने अनुभव की परिपक्वता के फलस्वरूप लिखी गई वेदान्त पर आधारित रहस्यपूर्ण कविताएँ।

परमानन्द की काव्य शैली की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया जा सकता है। उनके काव्य में यत्र-तत्र अनुप्रास एवं यमक की अनुपम छटा प्राप्त होती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पोशतस दीवकियि लूख आ'स्य यिवान।
पोशतस पूज़ि आॅस्य लागानो।
पोशतस ज़ि कृष्ण उपकारक संतान॥

प्रथम पंक्ति में "पोशतस' का अर्थ बधाई देना होता है। दूसरी पंक्ति में "पोशतस' का अर्थ उसे फूल अर्पित करते थे। तीसरी पंक्ति में "पोशतस" का अर्थ चिरंजीव होता है।

परमानन्द के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। किन्तु दोनों अल्पवय में मर गए। बड़ा विवाहित भी था। इस भौतिक सुख से वंचित होने के दुख के अनुभव का वर्णन उन्होंने एक स्थान पर किया है—

कुन त कीवल न सार सूरम'च आश।
निः पुतुर त नित्रन न रूदमुत-गाश॥

(मैं अकेला हूँ; मेरी आशा विलीन हो गई है। निःसंतान हूँ और आंखों में प्रकाश नहीं रहा है।)

महाकवि परमानन्द के कई योग्य शिष्य हुए हैं। उनमें नागाम के पं० लक्ष्मण जू प्रमुख हैं। यह भी कवि थे और इन्होंने 'नल दमयन्ती' नामक काव्य की कश्मीरी में रचना की है।

इनके गाँव का मुकदम सालेह गनाई यद्यपि परमानन्द का अधिकारी

था, फिर भी उनका काफी ग्रादर करता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि परमानन्द एक उच्च कोटि के योगी होने के साथ-साथ महाकवि भी थे। इनका देहान्त १८८० ई० में हुग्रा।

महाकवि परमानन्द पहले कश्मीरी कवि हैं जिन्होंने हिन्दी में भी कविता की। परमानन्द के समय यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति में परिवर्तन हुग्रा था। पठानों का शासन समाप्त हुग्रा था। सिख शासन के २७ वर्षों ने ग्रौर फिर धर्म-प्रिय डोगरा प्रशासकों ने यहाँ के त्रस्त हिन्दू समाज के लिए धार्मिक जीवन बिताने के लिए एक स्वतन्त्र एवं ग्रनुकूल वातावरण उत्पन्न कर दिया था। भारत के ग्रन्य भागों से काफी संख्या में धर्म-प्रिय पर्यटक, साधु ग्रादि कश्मीर के प्रमुख तीर्थों ग्रौर विशेषकर ग्रमरनाथ जी की यात्रा करने के लिए ग्राते थे। मटन ग्राम ग्रमरनाथ जी के मार्ग में ही पड़ता है ग्रौर साथ ही यह एक ग्रखिल भारतीय महत्व का तीर्थ है। यहाँ पर गर्मियों के मौसम में काफ़ी देर तक साधुग्रों का निवास रहता है। परमानन्द जी का इन साधु-सन्यासियों के साथ सम्पर्क होने लगा। वेदान्त पर चर्चा, श्रीमद्‌भागवत का पारायण ग्रौर संकीर्त्तण ग्रादि के कार्यक्रम प्रायः ग्रायोजित होते थे। इन संकीर्त्तण के ग्रायोजनों में महाकवि परमानन्द हिन्दी के प्रमुख भक्त कवियों की कृतियों से परिचित हुए। ग्रतः हम देखते हैं कि परमानन्द पर जो व्यापक प्रभाव भक्ति का पड़ा है वह इन्हीं हिन्दी कवियों की कृतियों के कारण है। उन दिनों मटन ग्राम में स्वामी ग्रात्मानन्द जी नामक एक सन्यासी रहा करते थे। ये बड़े ही विद्वान ग्रौर योगी थे। इनके सम्पर्क में रहकर परमानन्द ने वेदान्त दर्शन का गहन ग्रध्यन करने के साथ संस्कृत भाषा का भी ग्रध्ययन किया। यही कारण है कि उनकी कविता में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। कहीं-कहीं पर तत्सम शब्द भी काफी संख्या में मिलते हैं।

गोकल हृदय म्योन तति चोन गूयवान।

चित विमर्श दीप्तिमान भगवानो ॥

इनमें हृदय, चित्त, विमर्श, दीप्तिमान तथा भगवान शब्द संस्कृत के हैं। उनकी बहुप्रशंसित कविता की प्रथम पंक्ति यहाँ उद्धृत की जाती है।

कर्म भूमिकायि दिज़ि धर्मुक बल।
संतोष ब्यालि भवि आनन्द फल ॥

इसमें कर्मभूमि, धर्म, बल, संतोष आनन्द-फल, संस्कृत के शब्द हैं। उपर्युक्त कविता के शब्दों को भली प्रकार न समझने के कारण परमानन्द ने खिव निवासी 'वहाब खार' (जो एक दरवेश थे) को कृषि सम्बन्धी आध्यात्मिक अर्थ से पूर्ण एक कविता सुनाई थी। जिसमें क़रारदाद, वादा, ज्यादा जैसे फारसी के शब्द प्रयुक्त किये गये हैं।

परमानन्द की हिन्दी कविता पर पंजाबी भाषा का भी प्रभाव पड़ा है। इसका कारण सिख शासन का प्रभाव तथा मटन में सिखों के गुरुद्वार में ग्रंथियों के साथ परमानन्द का सम्पर्क हो सकता है। एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

मन कंसा तन मथुरा होंदा।
कृष्ण आत्मा हृदि गोकुल रहंदा,
नारद विवेक सच सनियाँ देंदा ॥

इसमें 'होंदा' रहंदा और 'देंदा' पंजाबी शब्द है।

परमानन्द की लग-भग एक दर्जन हिन्दी कवितायें उपलब्ध है। इनका महत्व संख्या की दृष्टि से नहीं अपितु हिन्दी भाषा और साहित्य के देश व्यापी स्वरूप का आकलन करने के लिये उनकी तत्कालीन उपयोगिता और प्रभाव को समझने की दृष्टि से आंका जाना चाहिये। कश्मीर के इस महाकवि की "हिन्दी कविताओं" की समीक्षा काव्य शास्त्र की कसौटी पर न कस कर इसके राष्ट्र-भाषा के महत्व और उसकी

विस्तार सीमाओं के मूल्यांकन तथा विभिन्न प्रदेशों के पारस्परिक सांस्कृतिक आदान प्रदान की दृष्टि से करनी होगी ।

श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है और भगवान शंकर ने उनका दर्शन करने का विचार किया है और योगी का रूप धारण करके भिक्षा प्राप्ति का स्वाँग रचकर गोकुल में पधारे हैं । इस दृश्य का अनुपम चित्रण परमानन्द ने इस प्रकार किया है—

भिख्या मांगन सांग बनायो
आयो सदा शिव गोकल में ।
दर्शन करने को ध्यान धरायो ।
आयो सदा शिव गोकुल में ।।
नंगे सिर और नंगे पैरे
नन्दकेश्वर का सवारी था ।
अंग में भस्मा भभूत चढ़ायो
आयो सदा शिव गोकुल में ।।
हाथ में त्रिशूला कान में मुन्द्रा
सुन्दर मुख को करा कराल ।
घंटा शब्द और शंख बजायो
आयो सदा शिव गोकुल में ।।
गल में नागेन्द्र हारा पल मे
जल में जैसे उठी तरंग ।
गोकुल में भूकंप मचायो
आयो सदा शिव गोकुल में ।।

यशोदा ने देखा एक भैरव स्वरूप भिक्षा मांगने द्वार पर आया है । उसने श्रीकृष्ण को छिपा लिया । इस बात को अंतर्यामी ने समझ लिया—

अन्तर्यामी स्वामी देखा,
अन्तर बाहर पूर्ण मय।
बालकृष्ण का मुख उसने छिपायो,
आयो सदा शिव गोकुल में ।

यशोदा श्रीकृष्ण को घर में छिपा कर अन्न की मुट्ठी भर कर 'जोगेश्वर' के पास जाती है—

लेकर दाना मुड़ आयो जसोदा,
वसुदेव का वासुदेव न साथ।
सामने होके हाथ जुड़ायो,
आयो सदा शिव गोकुल में ।।

यशोदा को क्या मालूम उसके घर में किस विभूति ने जन्म लिया है। 'जोगेश्वर' श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

यह बालक हे जसोदा माई,
त्रिजगतांदा स्वामी है।
जिसको बतायो उसको बतायो,
आयो सदा शिव गोकुल में ।।
ना वेद आख सके ना भाषा,
व्यास पराशर शुकदेव।
महिमा जिसकी हमको दिखायो,
आयो सदा शिव गोकुल में ।।

गोपियों के विरह वर्णन और श्रीकृष्ण के प्रति उत्कट-भक्ति का परमानन्द ने सूक्ष्म वर्णन किया है। इन कविताओं में एक विशेष बात उल्लेखनीय है कि इनमें वेदान्त की अद्वैत भावना को भी समझाया है—

ना तुम देखो कृष्णा श्यामा,

पतिमा हमारा (म्हारा) लूको।

बाजीगर ने बाजीगरी की,
जिगर हमारा पारा लूको ॥

आखूँगा हम ना कह रखूँगा,
ना कहूँ तो मर जाऊँगा।
रिस के नसना, उसका हंसना,
चोरों का अलंकारा लूको ॥

एक और 'लीला' (कविता) गोपियों द्वारा यूँ कही गई हैं—

सदके उसको बुलाओ सदके सदके।
क्या आना तदके मर जाना जदके ॥

चारों वेदों का अर्थ यही है।
जप तप यम और बरत यही है।
छोड़ो कपाला अपना सद्गुरु पदके ॥

तुम होवो राजा तुमको आ जा मीटे।
कम करने से कम काजा मीटे,
क्यों घट में रहना घट वदके ॥

इनकी एक और कविता में श्रीकृष्ण के अवतार लेने का कारण स्पष्ट करते हुए वृषभान के द्वारा पूछे गये प्रश्न का नारद से इस प्रकार उत्तर दिया गया है—

जग में कृष्ण किस कारण आयो रे।
मग्न रहा बैठा परमात्मा।
बीच अपने कुछ भी नाहि जाना,
अपने आपको देखन आयो रे॥

चित्त-आभास का बाधा होके ।
कृष्ण आप ही आप राधा होके,
फिर गई माया, ना मोहन आयो रे ॥

'परमानन्द' विषयानन्द होके ।
मस्त रहे हस-हसके रोके,
आप अलेप आप लेपन आयो रे ॥

'परमानंद' परम आनन्द होके ।
अनाहद वाद योग नाद बिन्दु होके ॥
नित मुक्त होके नित बन्ध होके,
जग में कृष्ण उस कारण आयो रे ॥

रहस्यवादी भक्त कवियों की भाँति परमानन्द ने कई प्रतीकों से वेदान्त तथा अन्य आध्यात्मिक उपदेश दिए हैं । वास्तव में प्रायः अपनी कविताओं मैं इन्हीं गूढ़ बातों का समावेश करके अपने पाठकों को मोह-निद्रा और अज्ञान से जागने का आदेश दिया है—

श्याम मुख सन्मुख दिखावे ।
मेरा मन कैसा सुख पावे ॥
इन्द्रिय-नगर का राजा इंद्र होवे ।
मोह लंका का रामचन्द्र होवे ॥
कुंभ कर्ण करने का जगावे ।
देह द्वारका मन है कृष्ण जी ॥
भोग इच्छा अठ पटरानी ।
वख-वख लख घर बिछावे ॥
जमने का जमुना पार तरे ।

सतसंग गंग अश्नान करे,
न आवन तीर्थ तन न्हावे ॥

रहने क्या ना रहने का वेला।
है क्या यह एक दो दिन का मेला,
आयो अकेला फिर जायो अकेला ॥

श्रीकृष्ण की भक्ति में लिखी हुई उनकी बहुप्रशंसित कविता के कुछ अंश यहाँ उद्धृत किए जाते हैं—

रूप तुम्हारा अछा पछाना।
तुम बिन कुछ नहीं काम ॥
गोकुल में श्रीकृष्ण हुआ हो।
अयुध्या में श्रीराम ॥
वैरी तेरे कोई न होवे।
प्यारे तेरे और ॥
हिंसा कंसा मारा तारा।
प्रेम ने सुदाम ॥

वृन्दावन में रास रचायो।
नाम पयो गोपाल ॥
भोगी हो सब भोगाँ भोगे।
योगी हो निष्काम ॥

बाप हमारा कृष्ण हुआ हो।
पिता तुम्हारा नन्द ॥
आपस में क्या पहुँचोंगा हम।
आप करो दर दाम ॥

अन्तिम चरण में अद्वैत का एक सुन्दर उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किया है। परमानन्द कहता है, "आप मेरे पिता हैं (परमानन्द के पिता का नाम कृष्ण था) और आपका पिता नन्द है (कवि का वास्तविक नाम नन्दराम था) अब आप ही बताइए हम दोनों का आपसी सम्बन्ध क्या है ? इसका आपही हिसाब लगाइए।"

परमानन्द ने कर्मवाद पर बल देते हुए काफी रचनाएँ की हैं। उनके एक हिन्दी पद में कर्म सम्बन्धी विचार उल्लेखनीय हैं—

मात-पिता और सुत बंध-भ्राता।
जान लियो तुम दाता हो।
हाथ अपना है जी जगन्नाथा।
कृत-कृत्य प्रति पालन होयो॥

तुम समझते हो कि माता-पिता, बच्चे अथवा मित्र तथा सम्बन्धी तुम्हारी सहायता करेंगे, यह भ्रम है। तुम्हारा हाथ जगन्नाथ है (रक्षक है) तुम ने जो करना है सो करके स्वयं अपने पालक बनो। इस पद में हिन्दी के मुहावरे का यथावत् प्रयोग भी द्रष्टव्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व के इस कश्मीरी भाषी कवि ने अपनी मातृभाषा में रचित उत्कृष्ट कविताओं के अतिरिक्त कैसी मधुर हिन्दी में (परमानन्द इसे स्वयं 'भाखा' कहते थे) कविता की है।

—'शीराजा', जम्मू।

कश्मीरी साहित्य के निर्माण में महिलाओं का योगदान

●

कश्मीरी साहित्य के निर्माण में पुरुषों के साथ महिलाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यदि लल्लेश्वरी अरणिमाल तथा हब्बाखातून की वाणी को कमीरी काव्य से अलग कर दिया जाए तो इसमें खोखलापन ही दिखाई देगा। लल्लेश्वरी के दार्शनिक 'वाखों' अरणिमाल के विरहालापों तथा हब्बाखातून के प्रेमालापों से कश्मीरी काव्य कानन महक रहा है। उपर्युक्त तीन कवयित्रियों के अतिरिक्त भी कई लेखिकाएँ हमारे साहित्य में हुई हैं जिनका संक्षिप्त रूप में परिचय इस लेख में दिया जायेगा।

लल्लेश्वरी—

चौदहवीं शताब्दी में शैवधर्म की देशभाषा कश्मीरी में व्याख्या

करने के लिये लल्लेश्वरी का प्रादुर्भाव हुआ। आप श्रीनगर से सात मील दूर पाँपुर गाँव की रहने वाली थीं। ससुराल में इनको अपने विपरीत वातावरण मिला और सास की यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। मीरा की भाँति लोक लाज खोकर अपने पिया के प्रेम में सन्तों के संग में फिरी। उस समय के प्रसिद्ध शैवाचार्य सिद्धमोल से दीक्षा प्राप्त करके रहस्यमय पदों का गायन करती रही। आपको कश्मीरी भाषा की आद्य कवयित्री भी माना जाता है। अपने 'वाखों' द्वारा 'अद्वैत' भावना का ही प्रचार किया। उन्हें सर्वत्र ईश्वर का रूप दिखाई देने लगा—

गगन चय भूतल चय,
चय द्यन पवन त राथ।
अर्घ चंदुन पोश पोन्य चय,
चय सकलय त लॉगिज़िय क्याह ?

श्री शशिशेखर ने इसका पद्यानुवाद यूँ किया है—

देव फिर पूजा कैसी आज ?
तू ही पवन, गगन, भूतल तू, तू ही दिन तू रात
तू ही अर्घ्य पुष्प जल चन्दन सब कुछ तू ही तात
व्यर्थ आरती ! व्यर्थ ये पूजा के सब साज
देव फिर पूजा कैसी आज ?

श्रीमद्भगवतगीता के "सुखदुखे समे कृत्वा........." के भाव को लल्लेश्वरी ने इस वाख में स्पष्ट किया है—

पर त पान यम्य सोमुय मोन,
यम्य हिहुय मोन द्यन क्योह राथ।
यमिसय मन अद्वय सांपुन,
तमिय ड्युठ्य सुर गुरो नाथ॥

(जिसने अपने और पराये को एक समझा, जिसने दिन-रात को एक

समझा, जिसकी दृष्टि में द्वैत का भाव मिट पाया, उसी ने सतगुरु (शिव) का साक्षात्कार किया।)

आध्यात्मिक प्रचार के साथ-साथ लल्ला ने सामाजिक वर्णन भी किया है—

केंचन रॅन्य छय शिहिज बूनी,
नेरख न्यबर शिहुल करिव।
कचन रॅन्य छय बर प्यठ हूनी,
नेरख न्यबर ज़ंग खेयव।
केंचन रॅन्य छय अदल त बदल,
केंचन रॅन्य छय ज़दल छेय।

(कइयों की स्त्रियाँ चिनार की भाँति शीतल स्वभाव की हैं, जिनके साए में विश्राम कर सकते हैं। कइयों की स्त्रियाँ द्वार पर ठहरी हुई कुतिया की भाँति हैं, जो समीप आते ही टाँग काटती हैं। कइयों की चुगलखोर और कइयों की छेद वाले छप्पर की भाँति हैं।)

लल्ला सिद्ध योगिनी होने के कारण द्रष्टा थीं। उन्होंने कई भविष्य वाणियाँ की हैं। कलियुग में क्या होगा। इसका चित्र प्रस्तुत किया है—

तेलि मालि आसन तिथी केरन,
टंग चूंठ्य पपन चेरन सॅत्य।
माजि कोरि अथवास करिथ नेरन,
दोह द्यन बरन परद्यन सॅत्य॥

[तब (कलियुग में) विपरीत बातें होंगी। नाशपाती और सेब खोबानियों के साथ पक्के हो जायेंगे। (खोबानी, सेब और नाशपाती से काफी पहले पकते हैं) माँ बेटी एक साथ (निर्लज्ज होकर) निकल-कर दिन भर पर पुरुषों के साथ बिताएँगी।]

आपने समाज सुधारिका के रूप में पाखंडों पर काफी चोट किया है।

लल्लेश्वरी के बाद "नुंदऋषि" की समकालीन शामबीबी नाम की एक सूफी कवयित्री हुई हैं। इसका काव्य कुछ लुप्त प्रायः ही है। तज़्किराए औलियाए काश्मीर (हसनकृत) में इनके जीवन के विषय में इस प्रकार लिखा गया है—"आप हज़रत शेखुलालम (नुंद ऋषि) के खलीफों में से थीं। शादी (सुहाग) के दिन पति के घर जा रही थीं। अकस्मात शेख की इस पर नज़र पड़ी और इस पाकदामन पर एक ऐसी हालत वाका हुई कि डोली से निकलकर आई और हज़रत शेख के पांवों पड़ गई। हज़रत के पाँव पड़कर ज़ार-ज़ार रोई। हज़हरत शेख ने नसीहत की और समझाया कि चली जाओ। परदा में बैठो.......।

वह बोलीं—

खाकिस्तर मुझको इश्के खुदा ने बना दिया,
नामूस न नंग शर्म–ओ–हय्या जला दिया,,

फिर पुश्कर गाँव में निवास किया और वहीं इनका देहान्त हुआ। हज़रत शेख के बारे में इन्होंने एक कविता भी लिखी है। पं० आनन्द कौल बाम्जई ने अपनी पुस्तक 'ए लाइफ आफ नुंद ऋषि' में शाम बीबी (द्यद) का वर्णन करते हुए लिखा है कि एक बार नुँद ऋषि को अपने सौतेले भाई चोरी करने के लिए ले जा रहे थे। वह नुँदऋषि के पास आई और कहने लगी—

आरह बलन रादा रोव, सादा रोव चूरन मंज़।
मूढ घरन गोरॅ परिडताह रोव,
'राज' हंसा रोव कावन मंज़।

(एक चश्मा एक नलप्रताप में खो गया है, एक सन्त चोरों में खो गया है।) एक विद्वान पंडित मूर्खों के घर में खो गया है। एक राजहंस कौओं में खो गया है। इस बात को सुनकर नुँद ऋषि को चेतना आ गई थी और वे पुनः साधना में लग गए।

इसके बाद कई सौ वर्षों तक कश्मीरी काव्य में लिखा हुआ बहुत कम साहित्य उपलब्ध होता है। सोलहवीं शताब्दी से कश्मीरी कविता में पुनः माधुर्य का सञ्चार होने लगा।

हब्बा खातून ने कश्मीरी काव्य को नये छन्द और नई लय प्रदान की। हब्बा के गीत अब तक लोक-प्रिय हैं क्योंकि इन में जन-मानस को छूने की शक्ति है। हब्बा एक ग्रामीण परिवार में उत्पन्न हुई थी और चोंदहार अथवा बोटन्योव की रहने वाली थी। बाद में इसके साथ तत्कालीन कश्मीर नरेश यूसुफ शाह चक ने विवाह किया था और यह मलिका बनी थी। यूसुफ के साथ कुछ वर्ष रहकर इसने राजसुख भोगते हुए अनेक प्रेम-गीत लिखे। विधाता ने इसके जीवन में एक विघ्न डाला। यूसुधशाह चक को अकबर बादशाह ने धोखे में कैद कर लिया और आजन्म विहार में रखा।

हब्बा को यूसुफ का विरह सहन न था उसने अपने पति के विरह में काफी गीत लिखे जिनका कश्मीरी साहित्य में काफी ऊँचा स्थान है:—

च कम्यू सोनि म्यानि ब्रम दिथ न्यूनखो,
चे क्योहज़ि गयो म्यान्य दँय।
चख त्राव तॅ मलालै छुहुम म्य चय
चे क्याज़ि गॅयो म्यान्य दँय॥

(तुम्हें मेरी किसी सौत ने फुसलाकर लिया है। तुम मुझे से क्यों विमुख हुए ? गुस्सा छोडो, रूठना छोडो, मेरे प्राण ! तुम ही केवल मेरे हो।)

एक और गीत में अपनी सहेली की ओर सम्बोधित होकर कहती है—

वलय व्यस्य गच्छवै ऋछे, लूकव तृजहस रेछे।
तिमिनति म्योन ह्य गच्छे, वोलो म्यानि पोशे मदनो !

(आ साखी ऋछ साग चुनने जाएँ, लोगों ने मुझे चिढाना शुरू किया है। उनका भी मेरा जैसा हाल हो जाए। आजा मेरे कुसुम जैसे बाँके मदन आ जाओ।)

हब्बा के बाद में लिखे गीतों में नारी की असहायता और विरह की वेदना स्पष्ट झलकती है जो सम्भवतः अरणिमाल के अतिरिक्त और कहीं भी कश्मीरी-काव्य में प्राप्त नहीं होती है। हब्बा-खातून को कश्मीरी संगीत शास्त्र के इतिहास में भी काफी उन्नत-स्थान मिला है। वह नायिका भी थीं और स्वयं राग-रागनियों का सम्पादन करती थी।

हब्बाखातून के बाद कश्मीरी साहित्याकाश पर एक और तारिका उदित हुई जिनका नाम 'रूपभवानी' (अलक्ष्येश्वरी) १६२५ से १७२१ ई०) था। आप मूलतः एक सिद्ध योगिनी थीं, किन्तु प्रायः अपना उपदेश काव्य में दिया करती थीं। प्रो० पुष्प के शब्दों में "उसकी वाणी में वह काव्यात्मक ओज या माधुर्य नहीं जो 'ललवाखों' की विशेषता है। रूपभवानी के रहस्योन्मुख मुक्तकों ने औरंगजेब कालीन कश्मीर की जनता को नैतिक बल से अवश्य प्रेरित किया होगा।" अद्वैत की भावना से भरा इनका एक पद (वाख) देखिए—

ध्यान म्य च्ये तँ पानै बँ चँ
अँथ्य ज्ञानस च्य म्य नमस्कार।
पानै पान परज़ान तँ पाने व्यछै
नत अनज़ानस व्यच्छि जानिथ कोह।

(ध्यान में मेरे तुम ही हो और स्वयं भी तो मैं तू ही हूँ। इसी ज्ञान के लिए तुम्हें और मुझे नमस्कार हो। स्वयं अपने आप को जानो और उसकी व्याख्या करो। अन्यथा उस अजान (रहस्यमय) की व्याख्या कौन कर सकता है ?)

इसके अनन्तर अरणिमाल का नाम आता है। अरणिमाल कश्मीर के प्रसिद्ध फारसी कवि बहरितवील के रचयिता मुन्शी भवानी-

दास काचरू की धर्मपत्नी थी। काफी विदुषी थीं। कई भाषाओं का अध्ययन किया था। इनकी मृत्यु प्रो० हाजनी के मतानुसार १८०० ई० में हुई है। मुन्शी भवानीदास के विषय में किंवदन्ती है कि वे अरणिमाल के प्रति निर्दयी और निर्मम थे। विरहाग्नि में जलकर अरणिमाल ने तत्कालीन सामाजिक प्रथा के अनुसार घर में ही शर्म और लज्जा के वशीभूत चर्खा कातते हुए शेष दिन बिताए। चरखे की आवाज़ से स्वर मिलाकर यह व्यरहिनी गाती है :—

'गँ गँ मा कर हा यंदरो,
कनर्यन ति फलिलय मल'यो।

श्री शशिशेखर के मत में "महादेवी वर्मा की भाँति अरणिमाल भी असीम विरह की गायिका है। अश्रुमय कोमलता ही उसकी कविता का प्राण है। उसकी कविता में अभिव्यक्ति की सुकुमारता और अनुभूति की तीव्रता है।"

इसके कुछ पद यहाँ लिखे जाते हैं—

आशाव्यंदन हंदि धशोवे गटि मंज हावतम गाशोवे
लासन गोमो राशोवे प्रारान छसयो आशोवे
म्यतरन हुन्दुई ब्योल वविजे शँतरन ति करिजिन नाशोवे !

(रे आशावानों की आशा, मुझे अँधेरे में प्रकाश दिखाओ। वे सुदूर ल्हासा गए हुए हैं। मैं उनकी आशा में यहाँ प्रतीक्षा में हूँ कोई उन्हें लाए तो।)

अरणि रंगगोम श्रावंनि हिए।
कर इए दर्शुन दिए ?

(मैं श्रावण की हिय पुष्प थी, किन्तु अब मेरा अरणि (पीले रंग का फूल) जैसा रंग हो गया है। आली वे कब आएँगे और मुझ (विरहन) को दरस दिखाएँगे ?)

प्रेमी को ताने देते हुए अनुप्रास की छटा से युक्त इस पद में अरणि-माल कहती है—

हचि लोमनम न्यंदरि हचि मचि,
मछि मछ बंद सनिथ गोम ।
सोन न्यूनम रचि रचि,
वुन्यूब करिथ गोम ।
बनतॅ व्यस्य वोन्य कुस कस पचि ?

(निद्रा में उसने मेरी कलाई को खींचा । मेरी बाँह में बाजूबन्द चुभ गया । उसने मेरा सारा सोना छीन लिया और मुझे उन्मत्त बना कर छोड़ा । री सीखी ! कहो अब किस पर भरोसा किया जाए ?)

१८६० ई० के लगभग हज़रतबल में एक बीबद्यद नामक कवयित्री हुई हैं । उनका एक गीत प्रसिद्ध है । कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

बॅ रुम रुम छस सु ललनावान,
शालैमार दहिस प्यठ लॅर लॅज़्मय
सत-कुठ्य कंरिमस जून डबि सान ।
तथ मंज हज़्रथ यूसुफ छुमै बॅ रुम-रुम-छस सु ललनावान ।

हजरत बलॅचि 'बीब' दोपमय,
हज़्रथ सुंदुय रठ दामान ।
बडि डलॅ मंज़् बाग यार वुछमै,
बॅ रुमॅ रुमॅ छस सु लनॉवान ।।

(मैं अपने पिया को दुलारती हूँ । शालीमार के तट पर मैंने भवन बनाया । चाँदनी वाली अट्टालिका के सहित सात कक्ष बनाए । उसी में हजरत यूसुफ बैठे हैं । मैं अपने पिया को········। मैं हज़रत बल की

'बीबी' कह रही हूँ हज़रत का दामन पकड़ले। बड़े डल में मैंने उसका दर्शन किया है । मैं अपने पिया को.........।)

पठानों के शासनकाल में यहाँ के दीवान पं० दिला राम मंदछू की सुपुत्री राजरेन्य (राजरानी) भी कविता किया करती थीं । इनका विवाह पं० महानन्दजू दर के साथ हुआ था । अपने भाइयों के यज्ञोपवीत संस्कार पर आशीर्वाद देते हुए इन्होंने लिखा:—

गून्दँ काख चोन्दँ काख कूॅस छुम नानस,
आकाश प्रकाश लसेनम ।
लछि त्रोगुन आय आसिन सतरामस,
'राजरेन्य' रामस छु अरुनेरथ ॥

प्रो० पुष्प के अनुसार आज से लगभग तीस वर्ष पूर्व कोई 'तुलसी' (या तुलसस्तानी) हुई थी । उसकी एक आध गज़ल किसी-किसी को कण्ठस्थ है । जिसमें आध्यात्मिक आधिभौतिक प्रेम के स्वर संयोग की बहुत ही आकर्षक गूँज सुनाई पड़ती है । अनुवाद—

लय ऊँची थी साथ मेरी अर्थ गज़ल के पिय जाने ।
'योग' हमारा रंग चढाए, अर्थ गज़ल के पियजाने ॥

आधुनिक समय के प्रसिद्ध काश्मीरी कवि श्री दीना नाथ नादिम की माता जी भी कभी-कभी पद्य रचना करती थीं । उनके पिता भी कश्मीरी भाषा के कवि थे । इनका प्रभाव पुत्री पर भी पड़ा । पति की मृत्यु के उपरान्त छोटे बच्चों को लेकर वह दुःख के दिन व्यतीत करती हुई चरखा चलाते हुए यूँ गुनगुनाती थी—

मनॅकुई म्य गिलिट्रूर चूरि चोल,
मति सोन्तँ वन्तम कोनॅ फोल ।
कमि शायि ब्यूठुम छायि होल,
कव जायन कमि संजिमायि वोल ।

क्याह ताम छु गोमुत बुल बुलन।

(मेरे मन का 'गिलिट्टर' छिपके भागा, मस्त वसन्त में वह क्यों न खिला ? किस अदा से छाओं में छिपकर बैठा है। क्या जानूं किसके प्रेम ने उसे फुसलाया है। जाने आज बुलबुलों को क्या हो गया है।)

१९४७ के बाद कश्मीरी भाषा की जिए गति के साथ उन्नति हो रही है उसमें कुछ नवोदित लेखिकाएँ भी साथ दे रही हैं। इनमें 'आशा-कुमारी' 'आश 'महमूदा ज़बीं' और "जवाहरा बानू" का नाम उल्लेखनीय है।

आशाकुमारी कुलगाम की रहने वाली है और गज़लें लिखती है। छावुन'महजूर' की इस पंक्ति "बहारस दाद ह्योन छुम शौक सान गुल-जार छुम" के आधार पर आपकी गज़ल के कुछ अशार यहाँ प्रस्तुत हैं—

दिलस मंज यस हसद तय दय,
सु लोलुक मस म्य चावुन छुम।
गमव युस मोरमुत तमिसँइ,
हयातुक राज़ बावुन छुम॥

करॅन्य लूकन हॅद्यन दिलन,
अन्दर नॅव आश छम पैदा।
हटॉविथ नाउम्मेदी अज़,
नोवुई दुनिया बसावुन छुम॥

जिनके दिल में ईर्ष्या है उनको प्रेमामृत पिलाना है। गमों ने जिसको मारा है उसे 'हयात' का सन्देश देना है। लोगों के दिलों में नई 'आशा' का सञ्चार मुझे करना है। नाउम्मेदी को हटाकर आज मुझे नई दुनिया बसानी है।

"महमूदा जबीं" श्रीनगर की रहने वाली हैं। इनकी गज़ल के कुछ शैर इस प्रकार हैं :—

हरदँन्य वावन कोरनम पारो,
यितॅ नवॅ बहारो छुम अरमान।
शरॅ छस गॅजिमॅच चानि अमारो,
यितॅ नव बहारो छुम अरमान।

(शरद की वायु ने मुझे बेहाल किया है। हे नव बहार ! आजाओ तो मेरी यह अभिलाषा है। मैं तेरे प्रेम मैं पिघल गई। हे नवबहार आजाओ। 'यंबरज़ल' आज आँसू बहा रही है। 'मसवल' किसी के ध्यान में डूबी है। तेरे प्रेम में शालीमार भी विह्वल है, नव बहार आ जाओ।)

जवाहिराबानू बारामूला में रहती है। इसकी एक गज़ल (जो 'तरही मुशाइरा' के लिए लिखी गई थी।) के कुछ शेर सुनिए—

फोलिथ आमॅत्य चमन प्रथ तरफॅ खोतमुत-
जानवारन बोश
दिलन हॅद्य दाग गॉमत्य दूर आमुत लोलॅ वाल्यन जोश
गुलन तय सुंबलन रंग डीशिथ बुलबुलन डल्य होश
छि यिम गमगीन तिमनई अज खुशी हुन्द राज़-
बाबुन छुम ॥

(आज चारों ओर फूल खिले हैं और जानवर मदमाते हैं, दिलों के दाग़ दूर हुए हैं, प्रेमियों में नवोत्साह छाया है। गुलों और सुंबलों को देखकर बुलबुल खो गया है। जो आज उदास हैं उन्हें आज खुशी का सन्देश दिलाना है।)

—साहित्य-संदेश मई '६३

———

कश्मीरी सन्त कवि : एक परिचय

●

कश्मीरी साहित्य का काल विभाजन करते समय जिसे हम आदि-काल कहें उसे ही सन्त साहित्य काल नाम भी दिया जा सकता है। वास्तव में कश्मीरी साहित्य का आरम्भ सन्तों की सुमधुर वाणी से ही हुआ। इसके पीछे एक विशेष कारण है। १२ वीं-शताब्दी तक के ऐतिहासिक प्रमाणों से पता चलता है कि कश्मीर में हिन्दू राज्य होने के कारण संस्कृत को राज्याश्रय प्राप्त रहा और पण्डितों की भाषा भी यही रही। परंतु जन साधारण में एक नई भाषा का प्रचलन शुरू हुआ था, जो बाद में कश्मीरी कहलाई। कश्मीरी भाषा के प्रारम्भिक स्वरूप को देख कर उस में और संस्कृत में अन्तर करना कठिन हो जाता है। आरम्भिक सन्त कवियों अथवा कवयित्रियों ने जिस पदावली का प्रयोग किया उसमें भी संस्कृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं।

कश्मीरी भाषा का जन्म और विकास दरअसल मुसलमानों के

साथ हुआ। मुसलमानों के आगमन से जहाँ काश्मीर के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन पर काफी प्रभाव पड़ा वहाँ धार्मिक जीवन भी अछूता न रहा। नन्दन कानन काश्मीर में मुसलमानों के बड़े-बड़े फकीरों और सूफियों का आगमन होता रहा। उनके उपदेशों में जो दार्शनिक तत्व होता था उसमें यहाँ के निवासियों को साम्य दिखाई दिया। क्योंकि उनके वहाँ शैव-र्धम पनपा था। उनकी रग-रग में उत्पलदेव और अभिनवगुप्त जैसी विभूतियों का दर्शन और सिद्धान्त दौरा कर रहा था।

काश्मीरी साहित्य की कई मुख्य समस्याओं में इस समस्या के एक प्रामाणिक इतिहास का अभाव है। इस क्षेत्र में अभी तक कुछ भी प्रयास नहीं हुआ था। अभी हाल ही में साहित्य अकादमी ने यह कार्य प्रिंसिपल जियालाल कौल को सौंपा है और स्वतत्र रूप से श्री पी० एन० 'पुष्प' और श्री रहबर इस कार्य में लगे हैं। प्राचीन कवियों को रचनाओं के बारे में पता लगाना और उनके समय आदि के निर्णय का काम बड़ा टेढ़ा हैं, इन साहित्यकारों के बारे में कुछ बाताने के लिऐ केलव मात्र उनकी रचनायें और जनश्रुतियाँ ही मुख्याधार हैं।

काश्मीरी कविता का प्रधान भाव रहस्यवाद ही रहा हैं। १३वीं-१४ वीं शताब्दी के क्षिति श्रीकण्ठ के 'महानय प्रकाश' और लल्लेश्वरी के 'वाखों' से लेकर, जब से कश्मीरी साहित्य का आरम्भ हुआ, 'मास्टर जी' (जिन्दा कौल) तक हमने अनेक सन्त कवियों को पैदा किया। इन में मुसलमान भी हैं और हिन्दु भी। मुसलमानों पर सूफीवाद, मौलाना रूमी आदि, का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता हैं और हिन्दू कवियों पर वेदान्त अथवा शैव दर्शन की स्पष्ट छाप हैं। काश्मीरी सन्त कवियों में लल्लद्यद, नुन्दऋषि, ख्वाजा हबीबुल्लाह नौशहरवी, रूपभवानी, कलन्दरशाह, अब्दुल अहद नादिम, परमानन्द, स्वछ क्राल शमश फकीर, अजीज़ दरवेश, वाहब-खार, मिर्जा काक, कृष्ण राज़दान, लछ काक, मोहीउद्दीन मिस्कीन, ख्वाजा अकस, रहमान डार, अहद जरगर, लक्ष्मणजू, 'बुलबुल', ठाकुरजू

मनवटी, हलधरजू कोकरू, दयाराम, नीलकण्ठ शर्मा, जिन्दा कौल 'मास्टर जी' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। बहुत से कवियों का नाम अज्ञात हैं ! और बहुत से सन्त कवियों के नाम बहुत कम जानते हैं।

लल्लेश्वरी को काश्मीरी भाषा की आदि कवयित्री और जननी माना जाता है। नन्दनकानन कश्मीर को लल्लेश्वरी; जिसको प्रेम से 'लल्लद्यद' भी कहा जाता है, पर गर्व है लल्ला ने जिन आदर्शों का प्रतिपादन १४ वीं शदी में किया उन्हीं को आगे रख कर काश्मीर इस समय भी संसार में प्रसिद्ध हैं। धर्मनिरपेक्षता के सिद्धान्त की चर्चा जो आज हम सर्वत्र देखते हैं उस बात को अपनी वाणी में लल्लेश्वरी ने आज से कई सौ वर्ष पूर्व कहा था। लल्लेश्वरी का सिद्धान्त शैव दर्शन ही की एक प्रकार से काश्मीरी भाषा में व्याख्या है। उनका जन्म केसर पैदा करने वाले प्रसिद्ध ग्राम पाम्पुर (पद्मपुर) में १३६० ई० में हुआ था। यह काल काश्मीर के इतिहास में संक्रान्ति काल था।

शैव दर्शन के प्रसिद्ध काश्मीरी आचार्य उत्पल देव (९ वीं शताब्दी के उतरार्ध) ने कहा है—

ईश्वरोहमहमेव रूपवान, पण्डितोस्मि सुभगोस्म कोऽपरः।
मत्समोऽस्ति जगतीति शोभते; मानिता त्वदनुरागिणः।

अद्वैत की इसी भावना को लल्लेश्वरी ने निम्नलिखित पद्यांश में प्रस्तुत किया हैं।—

गगन चय भूतल चय, चय द्यन पवन त राथ।
अघे चन्दुन पोश पोन्य चय, चय,
सकलय तें लोगिजिय क्याह।।

कश्मीर के प्रसिद्ध हिन्दी कवि श्री शशिशेखर ने इसका भावानुवाद यूं किया हैं—

देव फिर पूजा कैसी आज ?

तू ही पवन, गगन भूतल तू, तू ही दिन तू रात,
तू ही अर्घ्य-पुष्प-जल चन्दन, सब कुछ तू ही तात।
व्यर्थ आरती। व्यर्थ अर्चना की यह भ्रममय बात,
व्यर्थ यह पूजा के सब साज।
देव फिर पूजा कैसी आज ?

मेरे कहने का त.त्पर्य यह है कि शैव दर्शन की गहरी छाप हमारे इन सन्त कवियों (विशेषकर हिन्दुओं) पर पड़ी है।

लल्लेश्वरी अपने युग की प्रतिनिधि कवयित्री थी। सन्त कवियों में हमारे यहाँ उनका नाम बड़े आदर से लिया जाता हैं। लल्लेश्वरी को प्राय: लल्लद्यद (मातालल्ल) के नाम से कश्मीरी याद करते हैं। मुसलमानों के आगमन के बाद काश्मीर में उत्पन्न हुए विषाक्त वातावरण को यदि उस समय शुद्ध करने में कोई समर्थ था तो वह था लल्ला' का अद्वितीय व्यक्तित्व। उनका साहित्यक परिचय देने के लिए एक अलग लेख की आवश्यकता है। कुछ लोग भ्रमवश उनकी तुलना हिन्दी साहित्य में मीरा के साथ करते हैं। वास्तव में उनकी टक्कर का यदि हिन्दी साहित्य में हमें कोई कवि मिलता है तो वह है कबीर।

लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

इसी बात को लगभग 'लल्ला' ने इन शब्दों में कहाँ हैं—

अन्दरति म्यचय, न्यबरति म्यचय।
म्य चेति पानस द्युतुम छोह ॥

अर्थात भीतर भी मिट्टी और बाहर भी मिट्टी; मिट्टी और अपने आप को मैंने एक पाया। इस का दूसरा अर्थ यह भी निकलता हैं कि अन्दर भी तूही बाहर भी तूही मैंने अपने को और तुम्हें (ईश्वर को) एक कर दिया।

सन्तों की प्राय: यह भी एक विशेषता रही है कि उन्होंने रूढियों और अज्ञान की खूब खबर ली हैं। कबीर की अनेक ऐसी उक्तियों से हम परिचित हैं। लल्लेश्वरी का एक पद्यांश प्रस्तुत है—

अव्यचारी छि पोथ्यन ह्‌व मालि परान
यिथ तोतँ परान छ्‌ राम पिंजरस।
(पोथी पर पोथी रटते रहते कोरे के कोरे,
ये पण्डित, ये अविचारी, कुछ ज्ञान न इन में गढता,
राम नाम का पाठ कि ज्यों पिंजड़े का तोता पढ़ता।)
—शशि शेखर।

कबीर को निम्न पंक्तियों से उपर्युक्त पंक्तियाँ कितना साम्य रखती हैं; देखिए—

"पोढी पढि-पढि जग मुआ, पण्डित, भया न कोय"

मीरा की भाँति लल्लेश्वरी का भी गार्हस्थ्य जीवन प्रतिकूल था। सास इसे तंग करती थी और पति सताया करता था। आजकल तो काश्मीर में यदि किसी सती साध्वी की प्रशंसा करनी हो तो कहा जाता है 'वह तो लल्लद्यद है।

लल्लेश्वरी की रचनायें चार-चार पक्तियों के पदों में प्राप्य है जिन्हें काश्मीरी में वाख (वाक्य) कहते हैं। इनके 'वाखों' का संग्रह श्री आर० सी० टेम्पुल, ग्रीयर्सन, पण्डित आनन्द कौल वाम्ज़ई तथा ट्रस्ट पब्लिशिंग हाउस ने किया है।

लल्लेश्वरी के समकालीन परन्तु आयु में काफी छोटे नुन्द ऋषि आते हैं। नुन्द ऋषि अथवा सहजानन्द (अथवा नूरुद्दीन जैसा कि मीर मुहम्मद हमदानी ने उनका बाद में नाम रखा था) का जन्म बिज-बिहारा ग्राम के पास कैमूह- में ईद-उ-जूहा के दिन ७७६ हि (१३७७ ई०) को हुआ था इनकी समाधि चार गाँव में है। नुन्द ऋषि के पिता

का नाम सालार-संज था जिसके पूर्वज हिन्दू थे और किश्तावाड के शासक थे। बाद में इनके किसी वशज ने काश्मीर में आकर इस्लाम धर्म स्वीकार किया था इनकी वाणी में भी जहाँ सूफी सिद्धांत का स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता था वहाँ कहीं-कहीं यह भी शैव दर्शन से प्रभावित हुए दिखाई देते हैं। इनके 'वाखों' को 'नूर नामा' अथवा 'ऋषिनामा' में संग्रहीत किया गया हैं। इनके कई पदों को नीतिपद ही कहा जा सकता है। उनमें आपने शिष्यों को उपदेश दिया है।

आप का एक 'वाख' निम्मलिखित है :—

आशक सुय युस अश्क सत्य दज़े।
सोंन ज़न प्रज़लेस पननुय पान॥
अशकुन नार यस वाँलिज सज़े।
अदि मालि वातिय सुय ला मकान॥

अर्थात :—

प्रेमी वही है जो प्रेम में जले।
जिसकी आत्मा स्वर्णवत प्रज्वलित हो॥

जब मनुष्य के दिल में प्रेम ज्वाल प्रदीप्त हो, तभी वह अनन्त परमेश्वर में विलीन हो सकता है।

लल्ला की परम्परा में रूप भवानी का नाम भी आता है। इन का जन्म काश्मीर के प्रसिद्ध धर वंश में हुआ था। इनके वंशज बड़े रईस माने जाते थे। इनका पारिवारिक जीवन आरम्भ से ही प्रतिकूल रहा। अन्त में अपने पिता पं० माधवधर (जो कि एक महात्मा थे) के पास जा कर शिक्षा ग्रहण की। अन्त में आप भी उच्च कोटि की सिद्ध योगिनी बनी थी। 'वासकुर' नामक गाँव में अपने भक्तों को उपदेश सुनाती तथा साधना के मार्ग में पथ प्रदर्शन करती थीं। इनके नाम से एक ट्रस्ट का निर्माण हुआ है वह इनके उपदेशों और 'वाखों' का संग्रह कर रहा है। अपने पदों में रूप-भवानी ने शिव के बाद लल्लेश्वरी और पिता माधव

धर को नमस्कार किया है। इनके जीवन का इतना व्यपक प्रभाव पड़ा है कि अधिकांश काश्मीरी पण्डित हनके श्राद्ध दिवस (माघ शुक्ल सप्तमीं) को व्रत रखते हैं।

परमानन्द (नन्द राम) १७९०-१८८० ई० का नाम सन्त कवियों में लल्लेश्वरी के बाद लिया जाता है। मास्टर जिन्दा कौल ने परमानन्द (तीन भाग) नामक अंग्रेजी पुस्तक में इनके बारे में लिखा है। परमानन्द सहज ही अपने पूर्व कालीन कवियों में शैली, छन्द आदि की विशेषता में अग्रणी है। केवल रहस्यवाद में लल्ला का स्थान ग्रहन नहीं कर सकता हैं। आपका 'शिव लगन' 'सुदामा चरित्र' 'राधा स्वयंवर' आदि बड़ी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं, आप पर वेदान्त का काफी प्रभाव था। उस का मुख्य कारण यह है कि उनका गाँव मटन (मार्त्तण्ड) में एक बड़ा भारी तीर्थ है, जो स्वामी अमर नाथ जी की यात्रा करते समय मार्ग में पड़ता है वहाँ पर प्रति वर्ष भारत के कोने-कोने से अनेक साधु महात्मा आते रहते हैं। उनके सम्पर्क से वह वेदान्त से वह प्रभावित हुए हैं। आप पहले काश्मीरी कवि है जिसने कि हिन्दी में भी पद्य रचना की है।

इनकी एक प्रसिद्ध कविता 'लीला-इ-जमींदारी' में मनुष्य के शरीर की खेत के साथ तुलना की गई है और सन्तोष का बीज बोकर आनन्द के फल की प्राप्ति कैसे होती है ? यह वर्णन किया है। इस कविता में 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्यां के सिद्धान्त की भी व्याख्या को गई है।

'सोछ काल' एक मुसलमान वेदान्ती हुए है। वेदान्ती ! यह सुन कर आश्चर्य सा होता हैं। पं० नील कण्ठ शर्मा जो कि वर्तमान समय के एक प्रसिद्ध भक्त कवि है, उन्होंने मुझे सोछ काल के अनेक ऐसे पद सुनाये जो एक प्रकार से वेदान्त सूत्रों की व्याख्या ही हैं आप एक जगह लिखते हैं—

'पननी बेबि ह्यतो बोय,
मद नो मोय दुर्यर छुय।'

अर्थात अपने गिरेबान में मुंह डालो और तब किंचित मात्र भी वियोग नहीं है।

इसी प्रकार शमस फकीर भी एक प्रसिद्ध सूफी सन्त कवि हुए हें। उनकी एक पंक्ति

"हा शाह सवारो कोर गच्छक,
आखर चे मरोन छुय।"

[अरे ओ शाह सवार कहाँ जा रहे हो ? अन्ततः तुम्हें मरना है।] वे इस संसार को असार मानते हैं।

बीसवीं शताब्दी के सन्त कवियों में 'अहद ज़रगर' (नर्ववर निवासी) का नाम भी बड़ा प्रसिद्ध है इनकी कविताओं को पढ़कर आश्चर्य होता है कि इनको हिन्दु धार्मिक कथाओं और सिद्धान्तों का कैसा विशद ज्ञान था। हिन्दुओं के इस सिद्धान्त कि विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ और कमल से ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया। इसी आशय को इस पक्ति में व्यक्त किया है—

"पम्पोश मंज गव पैद काइनात।"

(कमल से सृष्टि का निर्माण हुआ हैं)। एक और स्थान पर लिखते हैं—

"युस मेलि हेरि बोन सत्य जूहरस,
सुइ वनि न नूय पाठ्य अन-अल-हक।
राह किथ खोलहै शेख मन्सूरस,
बु करै नूरस॑ हो तै हो॥

[जो पूर्ण रूप से परमात्मा के साथ मिल गया हो, वही निडर होकर अन-अल-हक (अहम् ब्रह्मास्मि) कह सकता है।]

शेख मन्सूर पर कौन सा दोष लादा गया मैं तो 'नूर' की उपासना करूँगा।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पं० ठाकुरजु मनवट्ट भी एक सन्त कवि गुज़रे हैं। वे तो वेदान्त का ही प्रचार अपनी कविता में करते थे। उनकी भाषा संस्कृत गर्भित है। एक स्थान पर लिखत हैं—

मुझे अविद्या के दोष ने खोया हुआ सा कर दिया।
भ्रम से मैं पंचकोष के आधीन हो गया।
पंच कोषों से भी परे हे निरंजन (मेरी) रक्षा करो।

व्यसमृत कोरनस अविद्या दूषण,
भ्रम किन्य शरण सपनुस पंच कोषण ॥
पंच कूषातीत निरंजने।
नारायणो..............॥

हलधर जु कोकरू इनके शिष्य थे और बुधमूला (सोपोर) में इनका आश्रम था आप भी एक अच्छे सन्त कवि माने जाते हैं।

आज के सन्त कवियों में पं० नील कण्ठ शर्मा तथा मास्टर जी का नाम उल्लेखनीय है।

पं० नील कण्ठ शर्मा शादीपुर गाँव के पास डब के रहने वाले हैं। आप का जन्म १८९२ ई० में हुआ है। इनके ग्रन्थों में प्रसिद्ध 'श्रीमद् रामायण शर्मा' है। 'श्रद्धाञ्जली' इनकी लगभग २५० कविताओं का संग्रह है। आप शङ्कर के अद्वैतवाद से स्पष्ट रूप से प्रभावित हैं। ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस विषय को एक जगह आप यूँ समझाते हैं:—

"करत दशहार ज़ीव प्रावख ज्ञान।
स्वरत पान त्रावतो दीह अभिमान ॥
ज्ञान छुय मुक्ति हुन्द कारन,
युथअगन छुइ पाकुक प्रत्यख सादन।
ज्ञान रोस्त काँह छुन मुख्य प्रवात ॥

(हे जीव दशहार कर आत्मा को पहचानो और देह का अभिमान छोडो। ज्ञान ही मुक्ति का कारण है, जिसे अग्नि (तप) ही परिपक्व कर देता है। ज्ञान के बिना कोई मोक्ष प्राप्त नहीं करता है।)

"छ्यन यन च्येय निश गोस तन रोवुस,
गटि फिरनोवुस परदीशन।"

(जब से परमतमा से वियोग हुआ, तब से खो गया हूँ। अन्धकार (अज्ञान) ने मुझे भुल-भुलैयों में भटकयाया।

'मास्टर जी (पं० जिन्दा कौल) रहस्यवादी कवियों में अग्रणी हैं। आकाशवाणी द्वारा आयोजित २५ जनवरी १६५८ को जो कविता आपने सुनाई उसका अनुवाद बच्चन जी ने हिन्दी में किया हैं। उन्हीं को कुछ पक्तियाँ यहाँ उद्धृत करना काफी है—

तुम्हारी शक्ति का, प्रियतम, नहीं में जानता दूजा,
हृदय मन्दिर की तुम प्रतिमा बनो तो मैं करूँ पूजा।

×

हुआ गंदला धर्म का, नीर मत-पंथों की धारा में,
मुझे पीने दो वह जल जो नहीं बंधता किनारों में।
मैं हर जर्रे में देखूं खुद को, सब में एक को पाऊँ,
दुई रहने न पाये मैं कुछ ऐसा तुम में मिल जाऊँ।

मास्टर जी का जन्म १८८४ ई० में श्रीनगर में हुआ है। आप की प्रसिद्ध पुस्तक 'समरण' पर साहित्य अकाडेमी ने ५०००) का पुरस्कार भी दिया है। आप भी शङ्कर के वेदान्त से प्रभावित हैं।

संक्षेप में मुख्य-मुख्य सन्त कवितों का परिचय इस लेख में देने का प्रयत्न किया गया है। अन्य कवियों के बारे में विस्तार से जानने के लिए काफी अनुसन्धान की आवश्यकता है। प्रकृति के सुरभ्य वातावरण में एसे सन्त कवियों का उत्पन्न होना आश्चर्य की बात नहीं।

—साहित्य सन्देश '५८

कश्मीर की रक्षा के लिए कश्मीरी कवियों का संकल्प

●

१९४७ के अक्तूबर महीने में पाक-समर्थित कबायली आक्रमण के समय कश्मीरियों ने अपनी स्वतन्त्रता, परम्परा और धर्मनिरपेक्ष शासन की मान्यतओ की रक्षा हेतु अपने न्यूनतम साधनों से आततायियों को ललकारा था—

हमला आवर खबरदार,
हम कश्मीरी हैं तैयार।

१९६५ के अगस्त महीने में पाकिस्तान ने जब तथाकथित 'मुजा-हिदों' (घुसपैठियों) को नन्दन कानन कश्मीर में हजारों की संख्या में यहाँ के शांत वातावरण में खलल पैदा करने के लिए भेजा और यह कल्पना की थी कि अबकी बार संसार को बतलाया जायेगा कि यह

केन्दीय सरकार के प्रति आन्तरिक विद्रोह है, तो कश्मीर घाटी से यह ध्वनि फिर गूंजी।

अबकी बार कश्मीर पर हुए आक्रमण को सारे राष्ट्र ने अपने लिए एक चुनौती समझा। जम्मू कश्मीर का हर एक देश भक्त नागरिक विभिन्न मोर्चों पर तन गया और लल्लेश्वरी, नुन्द ऋषि, परमानन्द और मजहूर की धरती को, अपनी स्वस्थ सांस्कृतिक परम्परा को, पाकिस्तानी दरिन्दों से सुरक्षित रखने के लिए जाग उठा। यहाँ का साहित्यकार भी अपनी वाणी से जनता में नया जोश भरकर उसे कर्त्तव्य के पथ पर बढ़ने के लिये अग्रसर करने लगा।

जन्म धरा के प्रहरी

भारतीय सिपाही को अपूर्व उत्साह के साथ मोर्चे की ओर बढ़ते हुए देखकर अलहाज फाजिल कश्मीरी पुकार उठा—

"मैं भारत का सिपाही हूँ, हिमालय का पक्षीराज। मुझे संघर्ष की तड़प है और मेरा अन्दाज जवां है। मेरा मार्ग आकाश गंगा है और मेरी मन्जिल सुरैया है। मैंने कितने ही समरकन्द और शीराज देखे हैं।

यह आकाश मेरे इरादों में बाधा नहीं बन सकता। मेरा अभियान ऊपर की ओर है, मैं इससे हट नहीं सकता हूँ।"

वास्तव में आज से कई वर्ष पूर्व कश्मीर के राष्ट्रकवि स्वर्गीय गुलाम अहमद 'महजूर' ने स्वतंत्रता संग्राम में अपनी आवाज मिलाते हुए देश की भिन्न-भिन्न जातियों को एक होने और मिलकर अपने देश को बसाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी—

"छि बागस जानवार बोलान मगर आवाज छख ब्योन-
ब्योन यिहिंदिस आलवस या रब असर यकसान पैदा कर।"

महजूर को विश्वास था कि मेरे देश का नाम सारे संसार में चमकेगा। अतः आवश्यकता है कि मेरे देशवासी फिर से एक ललितादित्य,

ताजी भट्ट और मुबारक खान को पैदा करें।

१९४७ से ही कश्मीरी कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा जहाँ भारत के मुकुटमणि कश्मीर को उन्नति की ओर अग्रसर होने में अपनी लेखनी से सहयोग दिया, वहाँ वह पग-पग पर इस नन्दन कानन को जंगबाज़ों की कुटिल चालों का शिकार होने से बचने के लिये सचेत करता रहा। मक्खनलाल बेकस ने जंगबाज़ों को खबरदार करते हुए लिखा—

"मोकुर इराद ह्यथ अगर,
गनीम सरहदन अन्दर।
मगरछि सान्य शेरि नर,
रछान वतनुकुय विकार।
जंग बाज़ खबरदार।"

(हम लोग कदम-कदम बढ़ते जाते हैं। हमें अपने जवाँ गैरत की शपथ है, हमारे इरादे ताजा दम है। हम दुश्मनों को भगाते हैं। जंगबाज खबरदार हो जाओ। कुत्सित विचार लेकर जो हमारी सीमाओं के अन्दर घुस आये हैं लेकिन उनको याद रहे कि हमारे नर-पुंगव देश के गौरव को सुरक्षित रखने के लिये तैयार हैं।)

युगकवि नादिम की निम्न पंक्तियों में यहाँ के जन मानस की भावनाएँ स्पष्ट हो उठी हैं—

जो हथियाने की कोशिश करेगा इस मधु-भूको।
जो आगे आयेगा, छेड़ेगा इस वीर प्रसू को॥
समझो, दिन उलटे आये हैं, उस पापी दुश्मन के।

—अनु० निराश

हमारे देशवासी मूलत: शान्ति प्रिय हैं, वह जंग नहीं चाहते। यह अभिनव गुप्त और ग़नी कश्मीरी की धरती है। हमारे चिरकाल से संजोये स्वप्नों को, हमारी रंगीन तमन्नाओं को साकार करने के लिए

शान्ति की आवश्यकता है, लेकिन जब सरहदों पर जंगबजों ने पुकारा है, तो मुहम्मद अमीन कामिल के शब्दों में—

"अमन पसन्द सॉन्य लुख,
दपान रोज़िहे न जंग,
मगर यि कथ ति मा जरव,
बे शोर कांह ति हावि हेंग,
शिशुर तिमन ति छा व्यचान,
बाहर ह्यथ यिहिन्द्य हलम।

(हमारे लोग शान्तिप्रिय हैं, वह युद्ध नहीं चाहते हैं। लेकिन यह भी कैसे सहें कि कोई घमण्ड दिखावे। जिनके दामन बहारों से लदे हों, उनको क्या जाड़ा कभी भाता है ?……हमें दुःखों ने नहीं रोका है और न हम बिजलियों से डरे हैं। यह बात उन बहादुरों से पूछ, जो हमारी सीमाओं पर फूल बनकर खिल उठे हैं। विजय हमारी दासी रह चुकी है और दुःख हमारे नीचे दबे हैं)

कश्मीर के लोगों ने स्वतन्त्र भारत के नागरिकों के रूप में अपने देश के नवनिर्माण का दृढ़ संकल्प किया है और साथ ही युग-युगों से चले आते भाईचारे को सुरक्षित रखने का निश्चय किया है। वह अपने गुलशन को आबाद देखना चाहते हैं। कश्मीर का किसान लहलहाते खेतों को वीरान नहीं देखना चाहता। यहाँ का एक-एक निवासी निशात और शालमार को आग के शोलो में लिपटा हुआ नहीं देखना चाहता। वह प्रेम और भ्रातृभाव कीं वेदी पर हर एक चीज कुरबान करने के लिए तैयार है।

वर्तमान ममय, सारे भारत के लिए और विशेषकर कश्मीर के लिए कड़ी परीक्षा का समय है। एक ओर से पाक्तिान ने हम पर आक्रमण कर के, हमारे आदर्शों को चुनौती दी है और इसी प्रकार दूसरी ओर चीन भी हमरी प्रगति में बाधा बनना चाहता है। कश्मीर निवासी कठि-

नाइयों से जूझते हुए आगे बढ़ने का आदी हुआ है। उसको पूरा विश्वास है कि अन्तिम विजय हमारी है। यह है केन्द्रीय भाव अमीन कामिल की कविता का। इस कविता की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

सब ओर से लोग जागे हैं।
कश्मीरियों का खून उबला,
मराठों में जोश आया।
हिमालय के जवान जागे,
आसाम के प्रहरी उठे हैं।
बंगली उठे हैं,
और पंजाबी तेग लिये हुए हैं।"

पुकारता है मुकद्दस वतन बहारों का

हमारे कर्णधारों ने वर्तमान संघर्ष के बारे में स्पष्ट शब्दों में कहा कि यह युद्ध दो विचार धाराओं का युद्ध है। अतः हमारे सुरक्षा-सैनिक हमारी परम्पराओं के रक्षक हैं। अलहाज फाजिल कश्मीरी के शब्दों में—

"हम अपने स्मारकों के रक्षक हैं। मन्दिरों के शंखनादों, गिरजों के आध्यात्मिक संगीत, गुरूद्वारों के नाम स्मरण की ध्वनि, खानकाहों से अलौकिक नाद और सही दीन, पूजा और निमाज के तरीकों के हम रक्षक हैं।"

कश्मीरी कवियों के अतिरिक्त यहाँ के अन्य भाषा-भाषी कवियों ने भी जनता को सचेत किया है, चीनी और पकिस्तानी आक्रमणों से। हम अपने देश की पवित्रता को कदपि आततायियों के द्वारा दूषित नहीं होने देंगे। कैसर कलन्दर की उर्दू कविता के कुछ पद—

"पुकारता है मुकद्दस वतन बहारों का,
शगफतगी से महकते हुए निगारों का।
हयात अंज ओ गुल अफरोज मरगुजारों का,

अजन्ता, ताज, एलोरा के ख्वाब जारों का।

पाकिस्तान और चीन के नापाक गठजोड़ से जागरूक कश्मीरी अब कभी उस पथ से विचलित नहीं होगा, जिसको उसने १९४७ में अपनाया था और जिसका महात्मा गांधी और पण्डित नेहरू ने मार्ग दर्शन किया था।

—धर्मयुग '६५.

युगकवि अब्दुल अहद आज़ाद

●

१९४७ से पूर्व कश्मीरी जनमानस को अपनी कविताओं द्वारा उद्वेलित करके स्वतंत्रता संग्राम के लिए आह्वान देने वाले कवियों में अब्दुल अहद आज़ाद का नाय अग्रगण्य है। आज़ाद वास्तव में राष्ट्र-कवि थे उन्होने अपनी कविताओं में मात्र कश्मीरी सामाज को ही नहीं अपितु समस्त देशवासियों को संदेश दिया है। एक महान कवि के अनुरूप उन्होंने देशवासियों के माध्यम से विश्व को मानवता का संदेश दिया। 'आज़ाद' की कविता में संकुचितता का अभाव ही उसे भारत के महाकवियों की परंपरा में ले आता है।

जन्म

अब्दुल अहद आज़ाद का जन्म श्रीनगर से १३ मील दूर तेहसील बड़गाम के राँगर नामक गाँव में संवत १९६० वि० (१९०३ ई०) में

हुआ था। आप के पिता का नाम सुलतान डार था। वह भी अर्बी, फारसी तथा मुस्लिम धार्मिक साहित्य के ज्ञाता था। सुलतान डार सूफी मिज़ाज का व्यक्ति था। उसकी इच्छा थी कि 'आज़ाद' भी इसी परम्परा को अपनाये। किन्तु यह कैसे संभव था ? अब्दुल अहद को एक युगान्तरकारी कार्य के लिए ईश्वर ने भेजा था।

अब्दुल अहद की प्रारम्भिक शिक्षा अपने ही भाई के द्वारा स्थापित मकतब में मिली। आरम्भ में उर्दू और फारसी की पढ़ाई की। अपने पिता से कुरान-इ-शरीफ़ तथा अन्य धर्मिक साहित्य का अध्ययन किया। १९८५ वि (१९१८ ई०) में लएभग सोलह वर्ष की आयु में इनके पास के ही गाँव जुवहामा में अरबी-अध्यापक के रूप में रु०१३ मासिक वेतन पर भेजा गया। इसके पश्चात अध्यापक के साथ-साथ कविने अपना अध्ययन भी जारी रखा। आपको अनुसंधान के प्रति काफी रुचि थी। कविता तो १५ वर्ष की अवस्था से ही करना आरम्भ किया था।

१९३१ की राजनैतिक घटनाओं ने आप को भी प्रभावित किया। सरकारी कर्मचारी होने के कारण सक्रिय रूप से आन्दोलनों में भाग तो नहीं ले सके किन्तु परोक्ष रूप से उस समय के वातावरण में रुचि लेने के कारण सरकार ने उन्हें अपने गाँव से दूर त्राल नामक स्थान पर स्थानांतरित कर दिया। इन्ही दिनों इनका इकलौता बेटा चार साल की आयु में बीमार हुआ और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस घटना के बाद कवि ने अपना उपनाम 'आज़ाद' रख दिया। इससे पहले बचपन में 'अहद' और बाद में 'जाँबाज' नाम से कविता करते थे।

महजूर से भेट

जीवन की एक और प्रसिद्ध घटना महजूर से भेट है। १९३४ में शिक्षा कला के प्रशिक्षण के लिए इनको श्रीनगर आना पड़ा। यहाँ उनकी इनके भेंट प्रसिद्ध कवि 'महजूर' से हुई। उनकी कविता के यह बड़े रसिया हो गये। "उनसे मिलकर उनके व्यक्तित्व से और भी प्रभावित

हुए कुछ देर उनसे इसलाह (काव्यशुद्धि) भी लेते रहे और उनका शागिर्द कहलाने में गर्व का अनुभव करते रहे ।"[१]

महजूर के जीवन और कृतित्व पर लेख लिखने के विचार से अब्दुल अहद आज़ाद ने कश्मीरी-काव्य का विशद अध्ययन किया और इस प्रकार कश्मीरी भाषा और कविता पर एक बड़ी पुस्तक लिख डाली ।[२] यह एक प्रकार से कश्मीरी साहित्य पर पहली आलोचनात्मक पुस्तक है ।

आज़ाद ने उर्दू के प्रख्यात कवि इक़बाल के काव्य का भी गहन-अध्ययन किया था । इसका भी उनके विचारों पर अच्छा खसा प्रभाव पड़ा ।

आज़ाद का स्वास्थ्य प्रायः ठीक नहीं रहता था । देश को स्वतंत्र देखने का इच्छुक भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के आठ महीने बाद अन्तड़ियों की भयंकर बीमारी का शिकार होकर ४५ वर्ष की आयु में देहान्त कर गया ! इनकी कब्र अपने जन्म के गाँव राँगर में ही है ।

आज़ाद की रचनायें

अपने अल्प जीवन में भी कवि ने अधिकाँश समय साहित्य-साधना में लगाया । प्रारम्भ में उन्होंने ग़ज़लें अधिक लिखीं । बाद में ग़ज़लों के साथ साथ नज्में भी लिखते रहे । जीवन के अन्तिम दिनों में राजनैतिक, सामाजिक और नैतिक संदेशों से भरी हुईं कवितायें अधिक लिखीं ।

उसके अतिरिक्त कश्मीर के एक प्रमुख कवि 'मक़बूल शाह क्रालवारी' के अप्रकाशित काव्य को अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका के साथ सम्पादित करके प्रकाशित किया ।

आज़ाद और उनकी कविता

आज़ाद ने लेखनी उस समय उठाई थी जब कि सारे देश में

(१) प्रो० पुष्प ।

(२) इस पुस्तक को कलचरल अकादमी ने प्रकाशित भी किया है ।

स्वतंत्रता के लिए कोने-कोने से आवाज़ आ रहा थी। कवि त्रिकालदृष्टा होने के कारण समाज का नेतृत्व करने में राजनैतिक नेताओं से पीछे नहीं रहा। उसके सामने एक स्पष्ट दृष्टि कोण था। वह संकीर्णता में फंसे हुए समाज, आर्थिक शोषण से दबे हुए मानव और राजनैतिक बन्धनों में पड़े हुए देश को इन सभी बन्धनों से मुक्त देखना चाहता था। यह वह आदर्श था जिसकी प्राप्ति के लिए कवि को कठिनाइयों से जूझना पड़ा।

मानवतावादी

आज़ाद मूलतः मानवताबादी था। उसके अनुसार मनुष्य में संकीर्णता के भाव ही एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य से दूर कर देते हैं। वह मनुष्य को सचेत करता है कि तुम स्वयं ही मानवता को बदनाम करने का कारण बन गये हो।

"तू तो बुद्धिमत्ता का प्रकाश स्तंभ था लेकिन तू आग बन गया। तुमने मानवता को, हे निर्दय मनुष्य, बदनाम किया।

मनुष्य एक ही तो है और संसार भी एक ही है। इन सब में नाखून और माँस का जैसा घनिष्ठ संबन्ध है। तो भला बता तुम्हारे भीतर द्वैत की आग किसने डाल दी है।"

(चओसुख गाटॅजारुक नूर लोगुथ नार इनसानो।
करॅथ इन्सॉनियथ बदनाम हा बे आर इनसानो॥
कुनुइ आदम कुनुई आलम नमस सॅत्य माज़-माज़स नम।
यि कम्य त्रोबुय दिलॅस अन्दर दुई हुन्द नार इन्सानो॥)

'आज़ाद' इस सिद्धांत में विश्वास रखता है कि भिन्न-भिन्न धर्म वास्तव में एक लक्ष्य तक पहुँचाने वाले हैं। अतः द्वैत और वैमन्यस्य काहे के लिए।

"यदि पूजा और निमाज़ का अर्थ 'दुई' है तो मैं ऐसी भेंट ईश्वर को वापिस सादर भेज दूंगा।"

(दोगन्यार छु योलि मतलब पूज़ायि निमाज़न हुंद ।
सोज़स ब यि बख्शाँयिश बेयि तूर्य लॅदिथ डाले ॥)

परमात्मा सब का एक है । उसमें द्वैत नहीं और यह संसार में उत्पन्न दुई के नज़ारे हमारी अपनी उपज है । "यदि प्रकृति की यह इच्छा होती कि हर राष्ट्र और प्रत्येक संप्रदाय भिन्न-भिन्न हों तो प्रत्येक राष्ट्र और सम्प्रदाय के लिए भिन्न-भिन्न पृथिवी और आकाश होता ।"

(को'दरतस ब्यो'न ब्यो'न थव'न्य येलि
आँसहन मिलत तॅ दीन ।
प्रथ अकिस ब्यो'न ब्यो'न ज़मीनाह
आसमानाह आसिहे ॥)

अपनी एक और कविता में आज़ाद कहता है कि "मेरे नज़दीक जैसा एक हिन्दू है वैसा ही मुसलमान है भाई चारा मेरा दीन है और समानता मेरा धर्म है, मेरा नूर (अस्तित्व) सबों के लिए हैं । मेरे लिए जैसा 'काबा' है वैसा ही 'बुतखाना' है ।

(युथ म्यनिश ह्योंद तय त्युथ मुसलमाना
गोश थाव बोज़ अफ़साना म्योन ।
दीन म्योन मिल'चार धर्म यकसाना
सारिनंई क्युत छु नूराना म्योन ।
युथ म्य निश काबा त्युथ छु बुतखाना
गोश थाव.....................................)

प्रकृति चित्रण

मानवतावाद का सन्देश देने के अतिरिक्त कवि प्रकृति-चित्रण करने में बड़ा चतुर है । कवि का अधिकांश जीवन शहर के कोलाहल से दूर प्रकृति का अध्ययन करने के लिए बीता है । आपने यत्र तत्र अपनी कविताओं में प्रकृति वर्णन किया है । इसमें आपकी शैली की तुलना

कविवर 'प्रसाद' और 'पंत' से की जा सकती है। आपने कई ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं जिनका विषय मूलतः प्रकृति ही है। उदाहरणार्थ…'पाँचादर' (जल प्रपात) व्यथ (वितस्ता) आरवल, शीनॅ मान्य, वनॅच यॉर, दरियाव इत्यादि।

इनमें से पाँचादर (जलप्रपात) इनकी उत्कृष्ट एवं प्रसिद्ध रचना है। इस कविता की भाषा संबन्धी विशेषता यह है कि इसमें कवि ने विशुद्ध कश्मीरी का प्रयोग किया है। 'जलप्रताप' नामक कविता में उसकी सुन्दरता पर कवि मुग्ध होकर कहीं-कहीं अनुपम मानवीकरण करने में सफल हुए हैं। 'निर्झर' की एक सुकुमारी के साथ तुलना की गई है और उसके अनुपम सौन्दर्य को नज़र न लगने की प्रार्थना भी की है। कहते हैं:—

"चक चाव छुई शुर्य पानस,
चश्म बद दूर अथ नूरानस।
शिलि पद्यान लाल माल परिये ।। रोज़ि०
दूर ड्यूठुम चोन पर तवा,
नूर चादर ज़न बर हवा।
मो'ख्त जालरन चूनि जय ज़रिये ।। रोज़ि०…

"जलप्रताप" में जहाँ प्रकृति-चित्रण सूक्ष्म ढंग से हुआ है, वहाँ साथ ही उसमें जीवन की समस्याओं के साथ इस का सम्बन्ध जोड़ कर कवि ने अपने विषय को व्यापक रूप से प्रतिपादित किया है। कवि "जल-प्रपात" से पूछ रहा है कि तू कहाँ से दौड़े-दौड़े आ रहे हो ? मुझे लगता है कि वहाँ 'परिवारिक-वितरण' तथा प्रभुता का मद आदि नहीं होगा ? वहाँ संभवतः 'जनेऊ' तथा 'मालायें' नहीं होंगी और न ही गदागिरी (भिक्षुक वृत्ति) होगी। इस प्रकार कवि वैषम्य की ज्वाला से पीड़ित प्रकृति में भी 'साम्य' को देख रहा है। इसीलिए कहता है कि हे जल-

प्रपात ! तेरी आवाज़ 'प्यासों' के लिए है, वह चाहे 'शाह' हो अथवा एक दीन-दलित ।

उपर्युक्त भावों को कवि ने क्या ही सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया है :—

'वारह वन्तम च़ आयख कते,
छुस बु ज़ानान आसि न तते—
बन्द बरादरी तॅ अफसरिये,
रोज़ी दमा पाँ चा़दरिये ।।
तति आसि नॅ योनि तँ मालॅ,
कुफ्र दीनँक्य कीनॅ मलालॅ,
न अमीरी न गदागरिये ।
रोज़ी दमा पाँ चा़दरिये ।।
त्रेशि हत्यन क्युत चोन सदा,
शाह सु आँस्यतन आँस्यतन सुगदा ।
आँस्यतन मजूर या दफ़्तरिये ।।
रोज़ि दमा.....................

एक अन्य स्थान पर इसी कविता में कहते हैं—

"तू अपने मोती के दानों की मालायें बना रही हो, और सात समुद्रों में भी गोते मारती हुई दिखाई दे रही हो । तेरे इस अद्भुत सौन्दर्य को देखने के लिए लन्दन के धोखेबाज़ आये हैं—"

(मालॅ करान मो'ख्तन तँ लदरन,
छालँ मारान मंज़ सतन सो'दरन ।
वुछिनि फंद बाज़ लंदनँक्य तरिये,
रोज़ि दमा पाँ चा़दरिये ।)

'आज़ाद अपनी सामयिक राजनीति से पूर्णतः जागरूक था और

इसीलिए इसने अंग्रेजों की चालों से अपने देशवासियों को सचेत किया। प्रायः हर एक स्थान पर कवि के अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक होने का हमें संकेत मिलता है। यही एक सफल कवि की विशेषता है। 'व्यथ' (वितस्ता) नामक कविता में वितस्ता को वेरीनाग की परी के नाम से संबोधित करते हुए कश्मीरियों के लिए एक संदेश दिया है। वितस्ता कश्मीर के लोगों के जीवन का एक प्रमुख अंग है। इसलिए उससे सम्बोधित होकर कवि कहता है कि "कश्मीरी द्वैत में डूबे हैं अतः उन्हे एकता का पाठ पढ़ा, जिससे यह लोग भी तर जाते—"

(दो'गन्यारन मॉर्य कॉशिरिये,
ह्येछनावतक कुनिरूक साज़।
यिम ति गछ्हन तारॅ तर्य तरिये ॥)

'आज़ाद' की प्रगतिशील कविताओं में उनकी 'यिथी वलवला पैदा कर नवजवानों (ऐसे ही वलवले रे नवयुवक उत्पन्न कर), 'पज़ि शमशेरे गिन्दुना कर' (सच्ची तलवार से खेलाकर) 'मो'जूरो (रे, मज़दूर !) आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। नवजवान को हिम्मत बान्धते हुए कवि कहता है, कि तू दृढ़ निश्चय पैदा कर और क्राँति का पग उठा यह समय ग़नीमत है, तुम्हारा सफ़र दूर का है इसलिए शीघ्रता कर।

'सच्ची तलवार से खेलकर' शीर्षक वाली कविता में कवि ने मेषानुगतिक न्याय को छोड़ कर, स्वयं अपना रास्ता खोज निकालने के लिए मनुष्य को प्रेरित किया है—

ब्रूंठिमिस पतॅ पतॅ पकवनि तीरे,
पानॅ ति ब्रोंह कुन नज़राह कर।
खयि मंज मा गच्छख नयि हंजि वेरे ॥
पज़ि शमशेरे गिन्दुना कर।

'मजदूर' कविता में मज़दूर की शोचनीय दशा को बड़े ही मार्मिक

शब्दों में वर्णन किया है और उसे अपने भाग्य का फैसला करने के लिए सन्देश दिया है।

उनकी प्रगतिशील विचारों की कविताओं में सब से बड़ी विशेषता यह है कि उनकी जीवन के प्रति आस्था है। उन्हें ज़िन्दगी से प्रेम हैं। 'शमा' कविता की यह पंक्ति देखिए—

"वदनस म्याँनिन असवुन तराना।
ग़मस मंज़ छु शादियाना म्योन॥

अर्थात् मेरे रोने में भी हास्य की लय है और उदासी में भी मुझे शादियाने दिखाई देते हैं।

कभी-कभी इन्होंने विनोद प्रिय होकर व्यंग्यात्मक कविताओं की रचना भी की है। यह किस प्रकार की भविष्य वाणी करते थे इस पंक्ति से वह स्पष्ट होगा—

'आलम हा करि याद आज़ाद आ।जांद,
अकि सातॅ वुछतँ याद पावै मदनो।'

(संसार आज़ाद को याद करेगा–यह मैं एक बार तुम्हें याद दिलाऊँगा।)

—शीराज़ा '६६

———

अन्ध-कवि 'रेह' कश्मीरी

●

हिन्दी साहित्य में सूरदास और अंग्रेजी साहित्य में मिल्टन का नाम आपने सुना है परन्तु उनकी श्रेणी के कश्मीरी कवि का नाम आपने शायद न सुना होगा। तो लीजिए सुनिए अन्ध कश्मीरी कवि 'रेह' के बारे में—

'रेह' का पूरा नाम वासुदेव पण्डित है, अट्ठाईस या उन्तीस साल की होगी और श्रीनगर से दूर एक कस्बे सोपोर के रहने वाले हैं। 'रेह' का अर्थ कश्मीरी में ज्वाला होता है। सचमुच रेह की कविताँए ज्वाला का काम करती हैं। सब से बड़ी बात यह है कि सम्भवत: अब तक कश्भीरी में किसी भी साहित्यकार ने अपना उपनाम ठेठ कश्मीरी में नहीं रखा।

'रेह' के साथ हुई मेरी एक भेंट में जब मैंने उनसे पूछा कि क्या आपसे पहले भी कश्मीरी में किसी ने अपना उपनाम रखा है तो आपने बताया—"हाँ, जहाँ तक मेरा विचार है सब से पहले मेरे बड़े भाई ने

रखा है। उनका नाम श्री रघुनाथ है और 'कस्तूर' नाम से कश्मीरी में कविता रचते हैं।"

'रेह' जन्मान्ध नहीं, कोई ५ या ६ वर्ष की आयु में सख्त बीमारी के बाद वे स्वस्थ तो हो गये किन्तु अपने भौतिक चक्षु सदा के लिए खो बैठे। इस लिए उनकी शिक्षा–दीक्षा औपचारिक रूप से न हो पाई। बचपन में उनके घर पर प्रायः विद्वानों का जमघट रहा करता था तो वासुदेव 'रेह' उनके साथ घण्टों वाद-विवाद किया करते थे। चाहे धार्मिक विषय हो चाहे राजनैतिक अथवा और कोई, वे उस में भाग लेते और अपने तर्क-वितर्कों से प्रति-पक्षियों को चुप करा ही देते। उनके विचार बड़े ही प्रगतिशील हैं। इसी लिए धार्मिक विचारों में कुछ लोग उनको आर्य समाजी मानते हैं।

अपनी पहली भेंट में मैंने उन से कुछ प्रश्न किए तो उन्हेंने जिस ढंग से अपने पक्ष को स्पष्ट किया उससे मैं काफी प्रभावित हुआ और मुझे पूरा विश्वास हुआ कि हम भी अपने कश्मीरी साहित्य में एक टैगोर, एक इकबाल और एक वल्लत्तोल पैदा कर सकते हैं।

मैंने 'रेह' से प्रश्न किया कि आपको कविता रचने की प्रेरणा कहाँ से प्राप्त हुई?

उन्होंने संक्षेप में कहा—"कविता रचने की प्रेरणा मुझे समस्याओं से मिली जो न जाने मुझे प्रायः प्रभावित क्यों करती थीं और योग्यता उस देवी से मिली जो लोरियाँ गाकर खिलाती थी और उनका अर्थ भी स्पष्ट करती थी।"

दूसरा प्रश्न जो मैं ने उनसे किया वह था—"अपको किस कश्मीरी कवि ने प्रभावित किया है?',

'रेह' ने कुछ सोचा फिर आकाश की ओर कह उठे—"मुझे उस कश्मीरी कवि ने प्रभावित किया है जिसे हम नहीं जानते। एक भिखारी था—सम्मेलनों से अपरिचित और साहित्य से दूर।"

मैंने 'रेह' को हिन्दी सम्मेलन की साहित्यिक बैठकों में एक बार किसी महानुभाव की रचना पर हिन्दी में आलोचना करते हुए समझ लिया था कि उन्होंने अवश्य हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया होगा। इस संदेह निवृत्ति के लिए मैंने उनसे पूछा—"आपका हिन्दी के विषय में क्या विचार है ?"

उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया—"हिन्दी भाषा के विषय में मेरा यह विचार है कि प्रथम तो यह राष्ट्र–भाषा है और भारत में प्रायः बोली जाती है। इसकी उन्नति में योग देना हमारा कर्त्तव्य है। हिन्दी लेखकों में मुझे प्रेमचंद ने काफी प्रभावित किया है।"

कश्मीरी भाषा के लिए लिपि समस्या एक बड़ी समस्या है। श्री रेह को मैंने अपनी रचनाँए देवनागरी में लिपिबद्ध करवाते हुए देखा। इस लिए मेरा विचार था कि वे देवनागरी के पक्षपाती हैं। मैं ने जब इस विषय में उनसे प्रश्न किया तो उन्होंने झट हँसते हुए उत्तर दिया—"लिपि के विषय में मैं नहीं जानता। क्योंकि मैं स्वयं नहीं लिखता ! अतः मुझे इन कठिनाइयों का अनुभव नहीं।" मैं भी अपने इस अजीब से प्रश्न पर मन-ही-मन लज्जित–सा हुआ।

एक और प्रश्न मैंने उनसे उनकी कविता के बारे में पूछा। उन्हीने बताया—"मेरी शायरी के विषय में मेरी शायरी स्वयं काफी है।" वास्तव में 'रेह' की कविता स्वयं एक महान् सन्देश है ! वह है मानवता और प्रेम का सन्देश। वह अपने कल्पना-लोक में राष्ट्रों की सीमित परिधि से वहुत ऊपर उठे हुए हैं।

अप्रैल में काश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा आयोजित एक "कवि-सम्मेलन' के उपरान्त 'रेह' की खूब घूम मची। बासुदेव 'रेह' जिन से कि कश्मीर का एक सीमित वर्ग परिचित था अब जनता में आ गये हैं। जनता ने उनमें एक महाकवि की प्रतिभा को देखा है। 'जश्ने-बहार' के दौरान जहाँ-जहाँ भी कवि सम्मेलन आयोजित हुए,

'रेह' की कविता सुनने के लिए जनता बहुत उत्सुक दिखाई दी।

'रेह' की इस लोकप्रियता का मुख्य कारण यह है कि उनकी कविता उच्चकोटि की है और युगों से मानव जिस संघर्ष से जूझ रहा है उसका प्रत्यक्ष चित्रण उनकी कविता में है। १९५७ के बाद कश्मीरी साहित्य ने अभूतपूर्व उन्नति की, यह ठीक है। परन्तु इतना तो मैं दृढ़ता-पूर्वक कहूँगा कि 'रेह' १९५३ के बाद अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। उन्होंने कश्मीरी कविता को आगे बढ़ाने में बड़ा ही महत्वपूर्ण योग दिया है और कश्मीरी कविता में नवीन विषयों पर पहल करने वालों में से एक हैं।

इनका काव्य अभी तक अप्रकाशित है। परन्तु कई मित्रों की प्रेरणा से वे शीघ्र ही अपना एक काव्य संकलन प्रकाशित करवाने की इच्छा रखते हैं।

उनकी एक कविता का शीर्षक है 'शब-गरुद' (रात्रि का पहरेदार)। इसमें एक पहरेदार की जबानी जनता के नाम सन्देश है। प्रायः लोग समझते हैं कि हमने नेता को चुन लिया है अब जो भी चिन्ताँए हैं वे सब उसी के सर पर हैं अब हम पैर पसारकर आराम करें। कवि ऐसे लोगों को चेतावनी दे कर रात्रि के पहरेदार से कहलवाता है। 'देखो भई, मेरा जागरण तुम्हें अन्ततः पार नहीं पहुँचायेगा। निश्चिंत होकर यदि तुम सो जाओगे तो जेब-कतरे को तुम परद या नहीं आयेगी।'

'यदि किसी को अवसर मिला, तो तुम जन्म-भर की कमाई से हाथ धो डालोगे।

'देखिए अभी बदनामों की कमी नहीं है, इसलिए खबरदार हो जाओ। खबरदार हो जाओ! कहीं मेरी आवाज एक कान से सुनकर दूसरे कान से मत उड़ाना।

'कहीं अपने बारे में आज या कल का चिन्तन दूसरों पर नहीं छोड़ना।

'कहीं चोर के वादों अथवा शपथों पर विश्वास न करना। कहीं मेरी चेतावनी को सुन यह सोचकर उपेक्षा न करना कि आखिर हमें क्या ?

,कहीं इसे दूसरे की पुकार जानकर यह न समझना कि हम अपने आप को बचायें, हमें क्या ?

'जब तक कि कोई आग लगाकर चला जाये और आप समझें हमें क्या ? मेरी यही आवाज शहरों, गाँवों सभी लोगों के लिये है। खबरदार, होशियार, मेरी यही आवाज हर रोज़ शाम को होती है।'

कवि को विश्वास है कि यह चोरी-चकारी का जो दौर है यह शीघ्र ही खत्म होने वाला है और आगे आराम के दिन होंगे। इसीलिए कहता है—

"थोड़े समय के लिये यह कठोर समय है—देखिए मनुष्य क्या करता है ? अरे देखो भाई, यही प्रतिदिन होनेवाली बात नहीं, यह ऐसा ही दौर है इसके लिये मनुष्य क्या कर सकता है ? परन्तु शीघ्र ही छीना-झपटी दूर होने वाली है और मनुष्य देखिए क्या करता है।"

"इसलिए इन दिनों ज़रा होशियारी से काम लो, मेरी यही आवाज हर शाम को होती है। होशियार। खबरदार !"

उनकी एक और कविता 'छठ' (आँधी) है। इस कविता में जिस सूक्ष्मता से आँधी का मानवीकरण करके चित्रण किया गया है वह कदापि पाठक को यह मानने के लिये तैयार नहीं करता कि इस कविता का रचयिता भौतिक चक्षुओं से हीन है। सम्भवतः सम्पूर्ण कश्मीरी साहित्य में ऐसी रचना उपलब्ध नहीं हो सकती है।

कविता यूँ आरम्भ होती है—"कल वह आँधी आई थी मानों किसी से आलिंगन करने के लिये दौड़ रही थी।

"प्रत्येक वक्ष देखकर उसे भ्रम-सा हो रहा था, संभवतः सब कुछ भुलाकर वह निकली थी।

"वह तो परेशान होकर फिर रही थी जैसे सारा संसार ढूँढ़कर आई थी। फिर फिर कर वह आ रही थी—कुछ उसे सुनना सुनाना तो नहीं था। नहीं तो उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार तो नहीं करना चाहिए था। उसे किसी को पागल तो नहीं बनाना था।

"मैंने उसके धूलि-भरे शरीर को चूमा उसके पैरों में गति देखी। मैंने उसे आशीष दिया—तुम्हें सहानुभूति करने वाला यार मिले जिसे तुम अपने रहस्यों से परिचित करोगी।

"मैंने सोचा कि कुछ उसे कहूँ :

"परन्तु तब उसे अवकाश नहीं था—इसलिए मैं क्या कहता ? मैंने सोचा वह खुद ही चिन्ताकुल है इसलिए मैं अपनी मुसीबत उसे क्या कहता ?

"उसमें कुछ आर्द्रता-सी थी। कहीं उसे मज़बूरों के आँसुओं ने तो आर्द्र नहीं किया था अथवा खुद ही वह पसीने के कतरों से युक्त तो नहीं हुई थी—यह जानकर कि मेरे प्रियतम आयेंगे।

" 'शी शी' की आवाज़ करती थी वह, मुझे लगा वह कह रही थी कि कोई आ रहे हैं। जो कुछ भी नहीं देखते यदि थोड़ी-सी झपकी लगे तो......"

इस लम्बी कविता में कवि ने जहाँ आँधी का सूक्ष्म चित्रण बड़ी कोमलकान्त पदावली में किया है वहाँ अपने असहाय जीवन की ओर भी संकेत किया है।

'ताहि मा बासान' (होता है आभास तुम्हें ?) इसकी सर्वाधिक प्रशंसित कविता है। इसमें मनुष्य के उत्साह का चित्रण किया गया है और उसके उच्च विचारों का प्रवाहपूर्ण भाषा में बड़े ही सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है। इस कविता के एक अंश का रसास्वादन कीजिए—

अभी-अभी मनुष्य ने सिर निकाला—उसके हाथों से कुछ ऐसी

चीज़ निकली कि तूफ़ानों का रंग ही बदल गया।

अजीब-सा परिवर्तन ज़माने में हुआ,
अरमानों में नया रंग छाया।
उन्होंने कहा कि हम हवा पर उड़ान करेंगे
दरियाओं के अन्तस्तल की थाह लेंगे।
पर्वत मालाओं पर खोज करगे !!
आकाश के तारकों तक उड़ान करेंगे ॥
उन्होंने कहा चन्द्रमा या तारे—
समय आयेगा—
निश्चय से हमारी मुट्ठी में होंगे,
इस पर हमारी दावादारी होगी।
शरद काल में बहार की रौनक होगी
बुलबुल विलाप करना भूल जायेंगे
अभी-अभी उन्होंने यह कहा।
होता है आभास तुम्हें ?

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि को मनुष्य के अथाह उत्साह पर विश्वास है जो कि उज्ज्वल भविष्य का निर्माता है। परन्तु साथ ही युद्ध-लोलुपों तथा मानवता के शत्रुओं के बीभत्स चित्र कवि की आंखों के सामने आते हैं और वह त्रस्त हो जाता है परन्तु आगे चलकर कवि ने आशा प्रकट की है कि 'रेह' (ज्वाला) सम्भवतः अपने प्रकाश से उनको सत्पथ पर लाने में सफल होगी।

'रेह कश्मीरी' ने गज़लें आदि लिखी हैं। उनकी गज़लों में कलापक्ष की दृष्टि से शब्द-चयन एक विशेषता है। एक ओर ठेठ कश्मीरी शब्दावली की छटा आपको मिलेगी तो दूसरी ओर भावों की मार्मिकता। कई गज़लों में उनके व्यक्तिगत जीवन का मार्मिक चित्रण स्वतः हुआ है। उनकी एक प्रसिद्ध गज़ल का एक अंश देखिए—

जो बाल्यकाल का मज़ा न लूट सका
और जीवन उसके लिये भार-स्वरूप हो गया।
जिसके मासूम सीने पर कुठाराघात हुआ,
और मजबूरियाँ का बोझ सहना पड़ा।
जिसे समय से पूर्व बचपन भूल गया
और जिसकी जवानी मिट गई,
मेरे यह अश्रुसिक्त ठण्डे उच्छ्वास
उस बेचारे के जीवन पर वारी जाय॥

—'साहित्य–परिचय' '५८

—०—

कश्मीर के उदीयमान हिन्दी कवि :

शशिशेखर

●

१९४९ की बात है, श्रीनगर में कविवर बच्चन जी का आगमन हुआ। स्थानीय हिन्दी प्रेमियों ने उनके सम्मान में एक स्वागत-सभा का आयोजन किया। एक कवि सम्मेलन भी हुआ। मंच पर आकर कॉलेज के एक विद्यार्थी ने भी कविता सुनाई। उनकी कविता से सभी लोग बहुत प्रभावित हुए। मैंने भी उन्हीं दिनों कालेज में प्रवेश किया था। मेरे मन में तीव्र इच्छा हुई कि इस नवीन कवि महाशय से परिचय ज़रूर होना चाहिए। अपने कालेज के हिन्दी प्राध्यापक से पूछ ताछ की तो उन्होंने बताया "शशिशेखर हमारे कॉलेज के दर्शन विभाग के प्राध्यापक एवं सुप्रसिद्ध कश्मीर विद्वान् श्रीयुत श्रीकंठ तोषखानी के सपुत्र हैं।"
मैं ने आजतक शशिशेखर को कॉलेज में नहीं देखा था इस लिए कल के मुशाइरे में ही उनके सर्वप्रथम दर्शन हुए थे। हिन्दी के प्राध्यापक ने मुझ

से कहा—"तुम्हारी जिज्ञासा युक्तियुक्ति है—तुमने शशिशेखर को यहाँ अभी तक देखा नहीं है। वह साइंस का विद्यार्थी है।" "परन्तु वह हिन्दी में कविता कैसे करता है ?" मैंने पुनः पूछा। 'भाई वह जन्म जात कवि है—वह हिन्दी का अनन्य प्रेमी है, जाओ देखो पुस्तकालय में वह इस समय भी हिन्दी की कोई न कोई पत्रिका पढ़ रहा होगा।"

प्राध्यापक महोदय की बात सत्य थी।

१९५० में हमने कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना। श्री शशिशेखर उसके संस्थापक-सदस्य थे और आज भी वह इस संस्था के साहित्य-मंत्री हैं। उन्होंने आजतक तीन सौ से अधिक कवितायें लिखी होंगी। कभी-कभी पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं और प्रायः का० हि० सा० सम्मेलन की साहित्यिक गोष्ठियों में सुनने को मिलती हैं। मैं तो उनकी कविताओं का रसिया हो गया हूँ। उनमें प्रायः ऐसी चीज़ मिलती है—जो हृदय को छू लेती है।

शशिशेखर प्रकृति से ही नहीं आकृति से भी कवि है। वह जीवन में भी स्वप्नशील हैं। यह बात उनकी कविता की इस पंक्ति से स्पष्ट है:—

'स्वप्न केवल स्वप्न'
केवल स्वप्न मेरे पास।
हर सुनहला स्वप्न,
बनता है सजल निश्वास ॥'

कवि के साहित्यिक जीवन में यह अवस्था आरम्भ में भी रही और अब भी यही बात है। असफलताओं से इतना जूझने पर भी वे स्वप्न-मूर्छित होते हैं, और नये आकार प्रकार ग्रहण कर सोते हैं—मरते नहीं हैं। इसलिए इनकी कविता में पाठक को स्वप्न ही ढलते नजर आते हैं।

श्री शशिशेखर ने बचपन से लिखना शुरू किया है और तब से

लिखते आ रहे हैं। अतिशय भावप्रवण (Sensitive) होने के कारण आप कवि बन गए हैं। कवि का कथन है कि छोटी अवस्था में, अपनी बड़ी बहन जी से बच्चन के गीत सुना करता था और कुछ बड़ा होकर मैंने 'निशा निमन्त्रण' आदि कविता-संग्रह पढ़ डाले। कवि की अधिकांश कविताओं में हमें दुःख मिलता है। इनकी एक कविता जो उन्होंने बचपन में लिखी इस प्रकार मैं—

'कोई नहीं है मेरा साथी, कोई नहीं है।
किसको अपना दुःख बतलाऊँ
किसको अपना भाग्य दिखाऊँ
अपने जीवन की दुःख गाथा
किसे कहूँ कैसे समझाऊँ।
सब ने मुझसे है मुंह फेरा।'

वास्तव में दुख ने कवि के जीवन को माँझा है—इनकी कविताओं को संवारा है। आरम्भ में यह उनमें एक भावुकता थी :—

'मैं प्रभात का बुझता तारा।
मरु में सूख रही जल धारा।
मैं गिरती दीवार, उठाना व्यर्थ मुझे।'

आपने आरम्भ में काफी मात्रा में निराशावदी गीत लिखे है, परन्तु उन में अनुभूति की सच्चाई रही। यद्यपि उन में कहीं-कहीं बचकानापन रहा है। लेकिन धीरे-धीरे यही दुःख परिपक्व हुआ और पीड़ा कवि के लिए जीवन की एक आवश्यकता सी बन गई। उनका विश्वास है कि जिसने पीर सही हो वही जीवन की गहराइयों में उतर सकता है—शेष सभी छिछले हैं—

'प्राण में हो पीर तो फिर
कंठ में भी गान होगा।

इसलिए मैं दर्द का सम्मान
करता हूँ जगत में।'

कविता में दुःख का उद्गम वास्तव में कवि जीवन की असफलताओं और कुछ-कुछ पारिवारिक अशाँति के कारण हुआ है। इसलिए अब पीड़ा एक प्रकार से कवि के जीवन की एक अभिन्न वस्तु होने के नाते उनकी कविता में प्रायः झलकती है—

'दर्द मुझ को दो,
तुम्हें मैं गीत दे दूँ।'

'आँसू' और 'स्वप्न' यह शब्द शेखर की कविताओं में प्रायः मिलते है। आंसू कवि की एक चिर परिचित वस्तु है जिसमें कवि के जीवन का साक्षात् होता है—

'मेरे आंसू को आराधो,
मेरी मुस्कानें मत पूजो।
यह मुस्कानें नहीं जिन्हें तुम
फूल कहो आँचल में भर लो।
मेरी मुस्कानें गोली हैं,
व्यर्थ न अपना मन तर कर लो।
मुझे देखना हो तो मुझको
आंसू के दर्पण में देखो।'

एक और कविता में कवि ने अपने जीवन की उपमा उजड़े उपवन से दी है। कवि को दर्द का अभिमान् है। इस बात की प्रतीति इस कविता में होती है—

उजड़ा उपवन हूँ पर अधरों पर
मधुवन की लिए कहानी।
शत शत इन्द्र धनुष शर्माए,

मैं उन रंगों का अभिमानी ॥'

'यूं पछताने को पड़ी बहुत सी बातें हैं
मेरे यौवन से हुई बड़ी नादानी है।
फिर भी जाने क्यों मेरी पीड़ा गर्वीली
जाने क्यों मेरा हर आंसू अभिमानी है।'

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि यह आंसू दबे हुए मानव के पराजय-गीत नहीं हैं।

कवि मानव के भविष्य के प्रति काफी आशावान है किन्तु उसे वर्तमान के प्रति घोर बौद्धिक असंतुष्टि है। उनका कथन है—'आधुनिक सभ्यता ने मानव जीवन को पंगु बना दिया है। इस मशीनी युग ने मनुष्य को मनुष्यता से वंचित कर, मशीन अथवा वासनाओं का क्रीतदास बनाया है।' कवि को वर्तमान सभ्यता के क्षयग्रस्त मूल्यों के प्रवि आक्रोश है। उनका विश्वास है कि इस समय एक गतिरोध उत्पन्न हो गया है। इस समय नये युग की प्रतीक्षा हो रही है। यहां पर उन की एक कविता 'पुकांरू मैं ?' की कुछ पंक्तियां देना उचित जान पड़ता हैं—

'नहीं क्या रात होती उन क्षणों में है
घनी काफ़ी
उषा के बाण से,
उसका हृदय कमजोर होता जब
कि आने को किरण-रथ पर
प्रभा का केतु फहराता,
सुमंगल भोर होता जब।....'

शशिशेखर की कुछ प्रारम्भिक कविताएं राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत हैं।
कवि के जीवन में यह एक विशेष अवस्था सी आ गई थी और बाद में

इस धारा ने मानतावाद का रूप धारण कर लिया। बीच में अराजकतावादी क्रांति की धारणा से प्रभावित होकर 'बहो प्रभंजन, जैसी कविताएं लिखी। इस प्रकार की कविताओं में भी अन्त में जनमंगल की भावना उभर आती है—

'............प्रलय पक से
खिले पद्म नूतन जोवन का।

यह श्मशान बने नव उपवन
तब हे मेरे प्रलय प्रभजन
नव मानवता के उपवन में
बन जाना तम मलय समीरण
धीरे धीरे बहना,
मानवता की, सत्य धर्म की,
न्याय शांति की
जय हो, जय हो, जय हो, जय हो।

मानवतावादी कविताओं में कवि ने सर्वत्र युद्ध और अणुबम की तुलना में गेहूँ को महत्ता दी है और अंगारों के बदले ओस को।

शेखर जी के विषय में एक बात जानने योग्य है कि वे कविता लिखने के समय शांति चाहते हैं—उन्हें एकाकीपन से प्यार है। दिन में कभी भी कविता नहीं लिखते। कविता लिखने के लिये उनके पास निश्चित समय है—रात या प्रभात। उन्होंने अधिकांश कवितायें प्राय: टहलते-टहलते लिखी है। उनका कथन है—'जब तक तीव्र अनुभूति न हो, मैं कोई कविता नहीं लिखता और यह अनुभूति कई दिनों तक रहनी चाहिए। इस प्रकार जब प्रथम पंक्ति फूट पड़ती है तो कविता शुरू हो जाती है।

एक बार मैंने उनसे प्रश्न किया कि क्या आप कभी प्रकृति-सम्बन्धी लिखते ? उन्होंने बताया—'अभाग्यवश मेरी कविता आत्मकेन्द्रित (अन्तगुर्हावासी) रही है। जो कुछ मैंने लिखा उसकी प्रेरणा भीतर से आई, इस कारण प्रकृति से मेरा सीधा सम्पर्क नहीं रहा। जहाँ भी मेरी कविता में प्रकृति आई है वहाँ वह मानसिक गुत्थियों के लिये प्रतीक के रूप में आई।' इस सम्बन्ध में उनकी एक कविता 'ठूंठ और हरियाली' का उदाहरण यहाँ दिया जा सकता है। ठूंठ इसमें कवि का प्रतीक, उसकी Frustration (कुंठाओं) का प्रतीक है। जैसा कि इस पंक्ति से बोध होता है—

'वह सृष्टि-पृष्ठ का ऐसा
अथहीन अक्षर
जिसको न समय की आँखें
पढ़ ही पाती हैं।'

एक और कविता 'बीमार चाँद' में चाँद कवि के विचारों को अभिव्यक्ति कराने का माध्यम है।

इनकी कविताओं में अन्तर्मुखी बौद्धिक साधन भी झलकता है। इस श्रेणी में 'ताल में बत्तखें', 'बुलबुल चहकी,' 'पुराना लगता हैं', 'लाल फूल लाल ज्वाल', 'कुठाओं की दीवार' आदि आती हैं।

'बुलबुल चहकी' में खामोशी का वातावरण चित्रित करते हुए लिखते है—

'तो सहसा
उस खामोशी की गहन नदी में
पड़ा एक कंकर छोटा सा
हलचल मची
तरंगें सिहरीं

चौंका मेरा अहं...

आहट पाकर
साँकल बँधा सुप्त पशु जैसे
जाग देखता दायें बायें
मेरा मन भी जागा।'

इसमें कुछ खामोशी से प्यार है और कुछ बुलबुल से प्यार है। यह इनकी सम्भवतः पहली कविता है जिसमें रूप का सूक्ष्म और सुन्दर चित्रण हुआ है। इसके अतिरिक्त इसमें चित्रोपमता भी अनुपम है। बुलबुल की आँखों के बारे में एक जगह लिखते—

घुमा घुमा कर
दमयन्ती की मृदुलनाक के मोती जैसी
भोली सी चमकीली आँखें...।

'पुराना लगता है' कविता में जीवन में गतिरोध करने वाली शक्तियों के प्रति विद्रोह और आक्रोश है। वे शक्तियाँ और वातावरण जो मनुष्य की भावना और कार्य करने की शक्ति को अपाहिज बना देती हैं उवके प्रति झल्लाहट सी है। दैनिक रसहीन जीवन से कवि ऊब गया है और उससे भागना चाहता है।

मैं देवदास सा खड़ा रहूँ कब तक,
निर्जन वन का प्रहरी
उपवन में हंसने का सपना
क्या मुझे जन्म भर लूटेगा?
मैं वह चिर भूली पगडंडी
जो युग से खड़ी प्रतीक्षा में

कब किसी चरण की आपट से
उसका सन्नाटा टूटेगा

जीवन मेरे सम्मुख कोई तुम
नया घर कर आओ
मैं देख चुका हूँ, मुझको
यह परिधान पुराना लगता है।

कवि के प्राणों को दुख का आगमन भी एक पुराना मेहमान लगता है। आजकल के मध्यवर्ग के जीवन में जो उमस और घुटन पायी जाती है, उस की छाया कवि के मन पर पड़ी है। इस प्रकार की एक कविता 'कुंठाओं की दीवार' है। जिसमें कवि दर्शाता है कि कुंठाओं और घुटन के कारण वह जीवन में कुछ भी करने को असमर्थ है। एक दीवार सी उसके आगे खड़ी हुई हैं—जिसके पार जाने का वह असफल यत्न करता है—

'और यह दीवार
जिसके पार जाने का रहा कर
व्यर्थ मैं उपक्रम युगों से।
और यह दीवर !'

शशिशेखर की कविताओं में प्रेमवादी कविताओं की भी कमी नहीं है। प्रेम कवि के जीवन में प्रेरणा बन कर आया। इस से उनकी कविता रस-संचित हो गई। इस प्रकार कविता को मात्र निराशा की अभिव्यक्ति होने से बचाया। इस प्रेमवादी कविताओं में कवि अपनी प्रेयसी को 'संगिनी' के रूप में देख लेता है। उसको आह्वान करते हुए वह कहता है—

'बांसुरी मेरी, तुम्हारी सांस:

आओ मीत, हम भू को
नया संगीत दे दें।'

इनकी प्रेम-प्रणय की कविताओं में कहीं आशा और ताज़गी के दर्शन होते हैं और कहीं विरह-जन्य जड़ता के चित्र। सफल प्रेम का माधुर्य और प्रणय-कलह की कटुता—दोनों की झलक इन कविताओं में मिलती है। उदारहण—'अनचाहा मेहमान,' 'रूप की बरसात,' 'प्रणय की पुकार,' पवन-संदेशा' आदि इनकी सर्वश्रेष्ट कविताओं में से हैं। 'अनचाहा मेहमान' में जहां करुणा की मार्मिक धारा बहती है, वहाँ रूप की बरसात एक नयी स्फूर्ति लेकर आयी है। प्रणयवादी कविताओं में भी कवि Frustration (कुंठाओं) के प्रतीक चिन्हों का प्रयोग करना नहीं भूला है। 'रूप की बरसात' जैसी सुन्दर तथा उत्कृष्ट कविता में भी 'मैं दिवस का ताप शापित कण्ठ से जिसको बुलाता……' 'मैं अतल सर आंसुओं का……' 'में कसक की चिर पिपासा की प्रखर जलती कहानी………'जैसे दर्द भरे वाक्य मिलते हैं।

अब मैं यहां पर कुछ ऐसे शब्द अथवा भाव-चित्र देता हूँ जिनका इनकी कविताओं में प्रायः प्रयोग होता है। इनमें नवीनता के साथ साथ मौलिकता और मार्मिकता भी है—'विरह व्यालिनी' 'कल्पना की कलाई' 'सपनों की सीढ़ी' आदि ये ऐसी मौलिक उपमाएं हैं जिनकी पकड़ निराली है।

शशिशेखर की प्रेम की कविताओं में कहीं भावनाओं की सकुमारता—कहीं रूप का उन्माद और कहीं आन्तरिक मिलन की पावन कामना मिलती है। एक कविता में कवि अपनी प्रियतमा को 'भोर की सुहानी धूप' कहकर कितना मीठा और सुन्दर चित्र अंकित करता है—

'भोर की सुहानी धूप सी
तुम मेरे मन, प्राण पर छाई रहो,
……छाई रहो।

संसारिक उलझनों और कोलाहल से, विपत्तियों और दुःखों से बच-कर कवि प्रियतमा के अंचल की शरण चाहता है :—

'आंखों में आंखें डाले प्रिय
घूर रहा है मुझे अनागत
आज शरण दो भुज बन्धन में,
आज मिलन का क्षण अपना है।

×

कल पग धरना पाप, मिलेगा
मुझे यहाँ से भी निर्वासन
जी भर नाचें आज सजनि,
यह सपनों का आंगन अपना है।

किन्तु कवि की प्रणय कविताओं में सुकोमलता और सुन्दरता पर स्थूलता की कलुष-छाया नहीं पड़ी। वे उसके 'आंसुओं' की भांति निर्मल हैं—'सजल गीत हैं।

आजकल बहुधा कवि का रुझान बुद्धिवादी अन्तर्मुखी साधना की ओर ही है। बुद्धिवाद के प्रति इस आकर्षण का कारण 'आडुअस हक्सले, के उपन्यास तथा 'अज्ञेय' की कवितओं का अध्ययन है। ऐसा वे स्वयं भी मानते हैं।

कवि ने प्रायः नये नये छन्दों और नये नये शिल्प-विधानों का प्रयोग अपनी कविता में किया है। त्रिपदियों, मुक्तकों, काल्पनिक-वार्ताओं के अतिरिक्त कवि की प्रौढ़ अभिव्यक्ति दो संगीत रूपकों में प्रस्फुटित हुई है। वे हैं (१) "बौर बादाम के" और (२) " मेघ-दूत"। 'बौर बादामों में,' 'युद्ध पिपासु, विश्व के सामने जीवन के (Positive) स्थिर तथा निश्चित मूल्यों की आस्था का महत्व जतलाया है।' बौर बादामों के संगीत रूपक में 'बसन्त' और 'फूल' जीवन के सुख, सुषमा और शांति के प्रतीक हैं। इसमें से एक पंक्ति देखिए—

'ओस की होगी विजय अंगार पर
फूल पायेगा विजय तलवार पर ॥'

इस में यत्र तत्र ध्वंसात्मक युद्धों का विरोध और नए विश्व की कामना की गई है। इसके एक पात्र पोशनूल (एक पक्षी विशेष) की यह यह पंक्तियां कितनी प्रेरणादायिनी हैं :—

तुम मरु-मरु को मुस्काता
नंदन कर दो
हर मुर्झाए विरवे को चंदन कर दो
सौरभ से कर सांसों की आज
सगाई.........।'

—'योजना' १९५९

———

कश्मीरी : उसकी समस्याएँ और भविष्य

●

कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यिक बैठकों में प्रायः भाषा के सवाल पर वाद-विवाद होता है। ऐसा होना ज़रूरी है, क्योंकि किसी भाषा का प्रचार करने के लिये विचार-विमर्श आवश्यक है।

भारत के स्वतन्त्र होने के बाद जहाँ भारतीय संविधान ने राष्ट्रीय भावनाओं का मान करते हुए हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया, वहाँ साथ ही अन्य १४ भाषाओं को भी विधान में एक विशेष स्थान मिला, जिनमें कश्मीरी भी शामिल है।

कश्मीरी भाषा के उद्‌गम के विषय में यह सर्वसम्मत है कि आधुनिक कश्मीरी में भी ८०% शब्द संस्कृत के हैं। भारत की अन्य भाषाओं की तरह ही कश्मीरी भी संस्कृत से निकली है और उसमें भी सभी भाषाओं की तरह गद्य की अपेक्षा पद्य का पर्याप्त भंडार सुरक्षित है। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि जितना पुराना साहित्य भारत

की अन्य प्रान्तीय भाषाओं में उपलब्ध है, उतना कश्मीरी में नहीं। तमिल भारत की एक अति प्राचीन भाषा है। इस भाषा में व्याकरण पर लिखी हुई सबसे प्राचीन पुस्तक 'तोलकप्पियम्' दो अथवा तीन शताब्दी ई० पू० की रचना है। इसी प्रकार बँगला, मराठी आदि भी अति प्राचीन भाषाएँ हैं। इसलिए उनका जितना समृद्ध साहित्य उपलब्ध है उतना कश्मीरी का नहीं कश्मीरी साहित्य की कोई विलेष कृति पाँच-छः सौ वर्ष से पूर्व की नहीं मिलती है। इसलिए कश्मीरी भाषा और साहित्य का भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा कम होना ही एक समस्या है।

कश्मीरी के उत्थान में एक बड़ी बाधा विदेशी राज्य भी रहा है, जिसके आधीन हम छः-सात सौ साल रहे। कभी सारा व्यवहार फारसी में तो कभी उर्दू में होता था। जब शासक ही पराये थे तो भाषा का उद्धार कैसे होता। कश्मीरी जनता पर भी उस समय एक प्रकार की मानसिक कमजोरी छा गई थी। फ़ारसी सीखने के बिना नौकरी मिलना असंभव था। इसलिए उन्हें अपनी भाषा और साहित्य की सुध लेने का अवसर कहाँ से मिलता?

सन् १९४७ के बाद से जहाँ जन-सरकार स्वकर्त्तव्य के प्रति जागरूक हुई, वहाँ जनता ने भी युगों का आलस्य छोड़ अपना कर्त्तव्य पहचाना। कश्मीरी भाषा के उद्धार के लिये १९४७ ई० से लेकर आज तक जितना प्रयत्न जनता ने स्वयं किया, उतना सरकार ने नहीं किया। सरकार अभी तक कश्मीरी की लिपि-समस्या को हल न ीं कर पाई है। कई प्रकार की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की गयीं, परन्तु कश्मीरी भाषा में पत्र प्रकाशित करने के लिये कोई कदम नहीं उठाया गया। इसके विपरीत यहाँ की एक सांस्कृतिक संस्था ने 'कोंग-पोश' नामक एक मासिक पत्र कई वर्षों तक चलाया। अब उक्त क्षेत्र में कश्मीरी-बज़्म-इ-अदब, दिल्ली का प्रयास सराहनीय है। राज्यकीय आश्रय की भी

आवश्यकता होती है परन्तु जब तक जनता में लगन न हो तब तक किसी चीज़ की उन्नति होना असम्भव है।

कश्मीरी भाषा की सबसे बड़ी समस्या है 'लिपि' की। लिपि वह साधन है जिससे हम अपने विचारों को सुरक्षित रख सकते हैं और उन्हें अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा सकते हैं।

कश्मीरी की असली लिपि 'शारदा' है। जो वहुत हद तक इसके लिये अन्य लिपियों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त थी। विदेशी शासकों ने तो हमारी इसलिपि की ओर ध्यान नहीं दिया। परन्तु वर्तमान जन सरकार ने भी अपनी इस सांस्कृतिक थाती को सुरक्षित रखने के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। यदि इसराइल सरकार ने अंग्रेजी का बहिष्कार कर अरबी तथा दो हजार साल पुरानी हिब्रू भाषा को राज काज के लिये उपयोगी समझा तो हमारे लिये लज्जा की कोई बात नहीं थी यदि हम कश्मीरी के लिये 'शारदा' लिपि को अपनाते।

यदि हम समूचे राष्ट्रहित को दृष्टि में रखें तो मेरा यही निश्चित मत है कि डोगरी की भाँति कश्मीरी के लिये भी हिन्दी और फारसी लिपि को अपनाया जाए। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि आने वाले समय में देवनागरी लिपि ही कश्मीरी के लिये अधिक उपयोगी सिद्ध होगी और जनता में यही लिपि लोकप्रिय हो जायेगी। वर्तमान समय में हमें यह एक आदत-सी पड़ गई है कि हम प्रत्येक वस्तु को राजनीति के माप-तौल से देखते हैं जो देश के व्यापक हित के लिये घातक है।

हमारा सम्बन्ध अधिक-से-अधिक भारतीय जन समाज से बढ़ता जा रहा है। इसलिए भारतीय जनता को अधिक निकटता से समझने के लिये तथा उनको अपने अधिक नज़दीक लाने के लिये जहाँ यह आवश्यक है कि हम हिन्दी सीखें, वहाँ हम देवनागरी लिपि को भी अपनायें। यह हमारे लिये लाज़िमी है।

कुछ लोग मेरी इस बात का विरोध करेंगे। मगर मैं उनको वही संज्ञा दूँगा जो कि मुस्तफा कमाल पाशा के विरोधियों को दी जा सकती थी, जिन्होंने अरबी लिपि को मोहवश छोड़ने से इनकार किया मगर तुर्की को आधुनिक सभ्य समाज की श्रेणी में बैठना था। उसने अपनी उन्नति के लिये क्रान्तिकारी कदम उठाये और प्रतिक्रियावादियों को मुँह की खानी पड़ी।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिन्हें कश्मीरी की उन्नति का तनिक भी विचार है, उन्हें देवनागरी लिपि को अपनाना चाहिए, जिससे कश्मीरी भाषा को काफी लाभ होगा। यही नहीं उसके साहित्य को आधुनिक भारतीय साहित्य में एक विशेष स्थान प्राप्त होगा।

लिपि के बाद जो दूसरा प्रश्न हमारे सामने उठता है वह है कश्मीरी का रूप ! इसका रूप कैसा था ? कैसा है ? और कैसा रहेगा ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

आरम्भ में कश्मीरी का रूप संस्कृतमय था। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्द अधिकांश रूप में मिलते हैं—ललेश्वरी के 'वाक्य' उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

अभ्यासि सविकास लय व्वथू,
गगनस सगुण म्युलु समिर्चटा।
शून्य ग्वोल त अनामय मतू
इहुय उपदेश छुय भटा॥

धीरे-धीरे कश्मीर में मुसलमानों का आगमन हुआ। उनके मेल से कुछ नए शब्द आ गये। इस मेल से जो भाषा बनी, उसकी दशा ठीक वैसी ही हुई जो खड़ी बोली की फारसी के प्रभाव से हुई, जिसे उर्दू कहा जाने लगा। फिर भी इस युग की यह विशेषता रही कि जिन कवियों का जनता के साथ अधिक सम्पर्क रहा और जिन्होंने जनता के लिए अपने साहित्य की रचना की, उनकी भाषा एक मिली-जुली संस्कृति की परि-

चायिका है। इसमें अरिनिमाल और हब्बा खातून की भाषा हमारे लिए आदर्श है।

'अरिनिमाल का एक पद्यांश सुनिये—

'अरिन्नि रंग गोम श्रावणि हिए,
करु यिये दर्शुन दिए।
शाम सुन्दर्य् पामन लॉजिस,
आम तावव कोताह गॉजिस।
नाम पैग़ाम तस कुस निये,
करु यिये..................॥'

इसी प्रकार हब्बा खातून का एक पद्यांश प्रस्तुत है—

गच्छत व्यसिए लाल मा स-दूरे,
तम्बलोवनम् शूरे पान।
×
दय नय दियि ड्यक नय पूरे ॥०॥

इन दो पद्यांशों में ध्यान देने योग्य बात यह है कि इनकी भाषा कृत्रिम नहीं बल्कि बोलचाल की कश्मीरी है। जहाँ 'अरिनिमाल' ने "पैगाम" जैसा फारसी शब्द लगाया है वहां हब्बा खातून ने भी परमात्मा के लिए 'दय' (दैव) का प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त 'आम ताव' जैसे ठेठ कश्मीरी के शब्द मिलते हैं तथा 'ड्य्क पूरे' जैसे कश्मीरी मुहावरे का प्रयोग है। प्रायः सभी उदारमना तथा कश्मीरी के हितैषी उपर्युक्त दो कवयित्रियों की भाषा को ही आदर्श कश्मीरी भाषा मानेंगे। इसके विरुद्ध जिनमें तथाकथित 'राजनीति' या 'धर्म ने अधिक प्रभाव डाला था, उन्होंने हमारी भाषा का उपकार करने के बजाय अहित ही किया। यदि हब्बा खातूस और अरिनिमाल जैसी जन-कवियत्रियों का अनुकरण हमारे साहित्य-कारों ने किया होता तो निश्चय ही कश्मीरी का स्थान आज भारत के अन्य प्रान्तीय साहित्य के समकक्ष होता। परन्तु न जाने किन

प्रति-क्रियावादी तत्वों से प्रभावित होकर कतिमय कवियों ने ऐसी भाषा का रूप हमारे सामने प्रस्तुत किया जिसको कश्मीरी न कह कर मैं बटकोशुर (हिन्दू कश्मीरी) और मुसलमान कोशुर (मुसलमान कश्मीरी) ही कह दूंगा। रसूल मीर, महमूद गामी औरपर मानन्द इसदोष से बच नहीं सके हैं।

आजकल भी कई ऐसे लोग हैं जो चिल्ला-चिल्ला कर 'अवाम की जुबान, में लिखने का अनुरोध करते हैं। किन्तु उनसे ज़रा पूछिए कि वे स्वयं कितनी सरल भाषा में लिखते हैं ? अजकल कई लेखक कश्मीरी में ऐसी भाषा का व्यवहार करते हैं, जिसके लिए एक साधारण पाठक को पहले फसीह उर्दू' का जानना आवश्यक हो जाता है। आश्चर्य है कि कुछ लेखक, जो अपनी रचनाओं में यत्र-तत्र चलती-फिरती कश्मीरी का प्रयोग करते हैं, कई अवसरो पर ऐसी पदावलियां ठोंस देते हैं, जिनसे भ्रम होता है कि यह कश्मीरी है अथवा फारसी ? इस दुर्गुण से कश्मीरी साहित्यकार को बचना होगा।

जब हम 'राय दहिन्दगान' और 'इन्तखाबी-मुहिम' जैसे फारसी के शब्दों को कश्मीरी में ठोसते हैं तो हम इस पर नाहक़ बोझ डालते हैं। कुछ लोग केवल इसलिए ऐसे तथाकथित अलकारिक शब्दों का प्रयोग करते हैं, क्योंकि उनके विचार में 'कश्मीरी-भाषा-सुन्दरी' की छवि निखर उठती है। किन्तु ऐसे महानुभावों से मैं 'इल्तमास' करता हूँ कि ग्रामीण संस्कारों में पली और प्रकृति के सरल और निष्कपट वातावरण में परवान चढ़ी हुई 'कश्मीरी-भाषा' को जो नन्हें-नन्हें किसलयों को ही अपने कानों में कर्णफूलों के बदले संजोती आई है; बड़े-बड़े वज़नदार झुमके न लगाइए। इससे उसके सुकोमल कान तो फट ही जायेंगे, उसके अतिरिक्त वह इस कृत्रिम शृङ्गार-भार से सहम जाएगी और बोझिल होने के कारण वह अपना चुलबुलापन खो बैठेगी।

शब्दों के चयन के बारे में भी हमें एक निश्चित नीति के अनुसार

चलना होगा। जो शब्द कश्मीरी में चलते हैं—चाहे वे ग्रामीण ही क्यों न हों, उनका प्रयोग करना चाहिये। नये शब्दों के कश्मीरी पर्याय ऐसे होने चाहिएं जो सुबोध और सरल हों।

यदि हम 'राय दहिन्दगान' के स्थान पर 'राय-दिन-वॉल्य' और 'इन्तखाबी मुहिम' के स्थान पर 'चुनावच हलचल' का प्रयोग करें तो अच्छा होगा। रेडियो कश्मीर से इस बारे में मेरी शिकायत है। वहां से जिस भाषा का व्यवहार होता है वह बनावटी है। रेडियो कश्मीर से प्रसारित समाचारों की भाषा का नमूना प्रस्तुत है—

...पनन्य पालिमी वाजेह करान-करान छु मिसरक्य प्रेजि़डंट कर्नल नासिरन पनिनिस अकि़स तक़रीटर मंज़ वोनमुत जि़ असि मपद्य हालस अन्दरय सपद्यमति बरतानियाहकि जारिहाना हमल प्यठ मुखतलिफ ममालिकन सूत्यॅ त ख़ास करिथ हिन्दस सूत्यॅ पूर-पूर बाहमी तालुकात क़ाईम। अथ सिलसिलस अन्दर छु अख क़रारदाद पास आमुत करन; यथ अन्दर यि कथ जेरि ग़ौर-छि आमच करन......!

उपर्युक्त भाषा अरिज़िमाल और हब्बा-खातून की परम्परा में आई हुई कश्मीरीं नहीं है। कुछ लोग सरल भाषा में लिखना अपनी हेठी समझते हैं। इसलिए कि कहीं उनके साहित्यकार होने पर संदेह न हो। इस विषय पर पं० ब्रजमोहन दत्तात्रेय ने अपने एक भाषण में सरल भाषा का समर्थन करते हुए 'कबीर' और 'शाहनज़ीर' की परम्परा को अपनाने के लिए कहा था। उन्होंने अपनी बात यों स्पष्ट की थी "छावनी में लाल कुर्ती बाज़ार के कबाड़ी का यह कहना 'साहब टू रूपी, खुशी टेक खुशी न टेक' कहने वाले के दिल की बात को ज्यादा खोल कर दिखाता है और सुनने वाला भी समझ जाता है। लेकिन अगर वह यह कहे 'मैं रद्दे क़ौल को रद्दे अमल से क़ाबिले ताज़ीर नहीं करार देता, दो रुपये से कम लेना मेरे नज़दीक बमन्ज़िलए गुनाह के हैं" तो कहिए उसे कौन समझेगा ?

जब तक कश्मीरी के लिए बुनियादी आवयकताओं का समाधान न किया जाये तब तक यह कैसे दावा किया जा सकता है कि कश्मीरी को भी हिन्दी और उर्दू के समकक्ष बनाया जाये। अभी तक तो उसका एक प्रामाणिक व्याकरण भी नहीं बना पाया है जो कि हमारी भाषा का संस्कार करता।

कश्मीर सरकार को कश्मीरी की उन्नति के लिए एक अलग 'अकादमी' बनानी चाहिए जहां कश्मीरी भाषा पर अनुसंधान करने के अतिरिक्त कश्मीरी की उन्नति के लिए योजनाओं को कार्यान्वित किया जावे। कश्मीरी में दो चार पत्र पत्रिकायें प्रकाशित होनी चाहिएँ। हिन्दी और उर्दू की परीक्षाओं की भांति जम्मू व कश्मीर विश्व-विद्यालय द्वारा कश्मीरी की परीक्षाएँ भी चालू की जानी चाहिये। कश्मीरी साहित्य का अनुवाद हिन्दी में होना भी अनिवार्य है।

कुछ भाई यह प्रश्न उठाते हैं कि यहाँ हिन्दी के प्रचार से कश्मीरी को 'खतरा' है, वह दब जायेगी। मगर उन महानुभावों से मेरा निवेदन है कि अभी तक कोई भी भाषा किसी अन्य भाषा के प्रभाव से दब या मिट नहीं सकी है। इतिहास इसका साक्षी है। हिन्दी के बारे में उपर्युक्त विचार करना प्रतिक्रियावादी मस्तिष्क की उपज ही समझी जायेगी। हिन्दी हमारी राष्ट्र-भाषा है और इसका सीखना हमारा कर्त्तव्य है। कश्मीरी हमारी प्रान्तीय शोभा है, इसके बिना हम जी नहीं सकते है। हिन्दी यदि तमिल और बंगला के लिए घातक सिद्ध नहीं हो सकती तो कश्मीरी के लिए कैसे होगी ? अन्त में मैं यही कहूँगा कि कश्मीरी की जो बुनियादी आवश्यकताएं हैं वे यदि पूरी की जायं तो निस्संदेह कश्मीरी का भविष्य उज्जवल है और इसका स्थान भारत की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समकक्ष रहेगा।

"पंपोश" नई दिल्ली (१९५८ ई०)

———

हमारे अमूल्य प्रकाशन

जीवनोपयोगी

१. सफलता के लिये क्या करें—(ले०—डा० हरिहर प्रसाद गुप्त)

स्व० श्री लालबहादुर शास्त्री, भूतपूर्व प्रधानमंत्री, भारत सरकार लिखते हैं—

'डा० हरिहर प्रसाद गुप्त ने अपनी पुस्तिका 'सफलता के किये क्या करें' में संक्षेप में यह बताया है कि मनुष्य को किस प्रकार अपने लक्ष्य की ओर सच्चाई, दृढ़ तिश्चय और पूर्ण आत्म विश्वास के साथ लगातार परिश्रम करते हुए अग्रसर होना चाहिए। पुस्तिका की भाषा सरल है। आशा है कि यह प्रेरणादायक सिद्ध होगी।

श्री बिशनचन्द्र सेठ, भूतपूर्व सदस्य लोकसभा, लिखते हैं—

'सफलता के लिये क्या करें नामक पुस्तक मिली, पढ़ने के बाद उपरान्त सत्यत: से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ कारण, सामान्य जनता को यह पुस्तक सत्यत: बल, एवं सुगममार्ग दर्शक बनेगी।'

	साधारण संस्करण मूल्य	पुस्तकालय संस्करण मूल्य
१. सफलता के लिये क्या करें	१·००	२·००
२. जवानों से—(ले०—डा०हरिहर प्रसाद गुप्त)	१·००	२·००
आलोचना		
३. हिन्दी के कवि— ,, ,,	१·५०	२·००

४. हिन्दी के लेखक–(ले०–डा० हरिहर प्रसाद गुप्त)			१·५०	२·००
बाल एवं धर्म साहित्य				
५. तुलसी के राम और भरत	,,	,,	०·७५	१·५०
६. अचरज भरी कहानियाँ	,,	,,	०·७५	१·५०
शोध साहित्य				
७. ग्रामोद्योग और उनकी शब्दावली	,,	,,		६·००
कोष				
८. संक्षिप्त प्रमाणिक कोष	,,	,,		४·५०

सत्य-आनन्द प्रकाशन

—०—

लेखक परिचय

नाम : चमनलाल सपरू

शिक्षा : एम० ए०, भा० हिं० पारंगत

जन्म : १९३५ ई०

व्यवसाय : अध्यापन, गवर्नमेंट कॉलेज, पुंछ (जम्मू)

कश्मीर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के संस्थापक सदस्य, भू०पू० महामंत्री, ज० क० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के सक्रिय सदस्य,

'कश्यप' मासिक पत्रिका के भू० पू० प्रबन्ध-सम्पादक,

अनेक शिक्षण एवं सांस्कृतिक संस्थानों से सम्बंद्ध, कई पाठ्य-पुस्तकों एवं कश्मीर सम्बंधी पुस्तक-पुस्तिकाओं के लेखक।

स्थायी पता : पुरुषयार, हब्बाकदल, श्रीनगर, कश्मीर ।